[2020] 12 एस.सी.आर. 915

एम. रविंद्रन

बनाम

आसूचना अधिकारी, राजस्व आसूचना निदेशालय

(2020 की आपराधिक अपील संख्या 699)

26 अक्टूबर, 2020

(माननीय न्यायमूर्ति श्री उदय उमेश ललित, माननीय न्यायमूर्ति श्री मोहन एम. शांतनगौडर एवं माननीय न्यायमूर्ति श्री विनीत सरन)

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 :

स्वापक औषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 की धारा 36क के साथ पठित धारा 167(2) – डिफ़ॉल्ट जमानत (व्यतिक्रम जमानत) / अनिवार्य जमानत – हेतु आवेदन – रिमांड की तारीख से 180 दिनों की अवधि पूर्ण होने के पश्चात् – विचारण न्यायालय द्वारा जमानत प्रदान की गई – उच्च न्यायालय ने इस आधार पर जमानत आदेश अपास्त कर दिया कि चूँकि जमानत आवेदन के निस्तारण से पूर्व अतिरिक्त परिवाद दायर कर दिया गया था, जमानत प्रदान नहीं की जानी चाहिए थी – उच्चतम न्यायालय में अपील – अभिनिर्धारित, धारा 167(2) का अधिनियमन निष्पक्ष विचारण, शीघ्र अन्वेषण एवं विचारण तथा किसी व्यक्ति को उसकी वैयक्तिक स्वतंत्रता से वंचित किए जाने से पूर्व युक्तियुक्त प्रक्रिया सुनिश्चित करने के उद्देश्यों के साथ किया गया था, जो स्वभावतः संविधान के अनुच्छेद 21 से संबद्ध है – धारा 167(2) की व्याख्या उपर्युक्त उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए की जानी चाहिए – यदि अभियुक्त, 180 दिनों की अवधि अथवा विस्तारित अवधि की समाप्ति पर, स्वापक औषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 36क(4) के साथ पठित धारा 167(2) के अधीन जमानत हेतु आवेदन करता है, तो न्यायालय उसे तत्काल जमानत पर मुक्त करेगा – अभियोजन, तत्पश्चात् अंतिम रिपोर्ट, अतिरिक्त परिवाद अथवा समय-विस्तारण की मांग करने वाली रिपोर्ट दायर करके अभियुक्त के ऐसे अधिकार के प्रवर्तन को विफल नहीं कर सकता – तथापि, जमानत पर वास्तविक रिहाई जमानत प्रदान करने वाले सक्षम न्यायालय द्वारा पारित निर्देशों पर निर्भर करती है – वर्तमान वाद में, अभियुक्त को उस समय जमानत के अधिकार का प्रयोग कर लिया हुआ माना गया जब उसने जमानत की मांग करने वाला आवेदन दायर किया तथा जमानत आदेश के नियमों एवं शर्तों का पालन करने की पेशकश की – तत्पश्चात् दायर अतिरिक्त परिवाद

के होते हुए भी वह जमानत पर मुक्त किए जाने का हकदार था – भारत का संविधान – अनुच्छेद 21।

विधियों की व्याख्या :

दंडात्मक विधियों की व्याख्या — निर्णीत : दंडात्मक विधि के निर्माण में यदि कोई अस्पष्टता हो, तो न्यायालयों को वह व्याख्या स्वीकार करनी चाहिए जो अभियुक्त के अधिकारों की रक्षा की ओर झुकाव रखती हो। यह सिद्धांत केवल वस्तुगत दंडात्मक विधियों तक सीमित नहीं है, बल्कि उन प्रक्रियात्मक उपबंधों पर भी समान रूप से लागू होता है, जो अभियुक्त की स्वतंत्रता में कटौती का प्रावधान करते हैं।

अपील स्वीकार करते हुए,

न्यायालय ने निर्णीत किया कि : 1. सामान्य विधिक प्रचलन में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के परंतुक के अंतर्गत जमानत के अधिकार को प्रायः 'डिफ़ॉल्ट जमानत' अथवा 'अनिवार्य जमानत' कहा जाता है, क्योंकि यह जमानत अन्वेषण अभिकरण द्वारा निर्धारित अवधि के भीतर अन्वेषण पूर्ण न किए जाने की चूक के कारण प्रदान की जाती है, वाद के गुण-दोष से निरपेक्ष। [कंडिका 6] [929-ए–बी]

2. स्वापक औषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 (एन.डी.पी.एस.अधिनियम) की धारा 36-ए में, उसमें उल्लिखित रूप में दंड प्रक्रिया संहिता के संशोधित अनुप्रयोग का प्रावधान किया गया है। धारा 36-ए के उपखंड (4) का प्रभाव यह है कि एन.डी.पी.एस. अधिनियम के अंतर्गत कुछ विशिष्ट अपराधों के संबंध में अन्वेषण, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) में प्रदत्त 90 दिनों की अवधि के स्थान पर 180 दिनों की अवधि के भीतर पूर्ण किया जाना अपेक्षित है। इस प्रकार, अधिक गंभीर श्रेणी के अपराधों के अन्वेषण हेतु अतिरिक्त समय-सीमा का लाभ प्रदान किया गया है। इस उपबंध को एक अतिरिक्त परंतुक द्वारा और सुदृढ़ किया गया है, जिसके अनुसार विशेष न्यायालय, यदि लोक अभियोजक द्वारा अन्वेषण की प्रगति दर्शाते हुए तथा 180 दिनों की निर्धारित अवधि से परे अभियुक्त को अभिरक्षा में रखने के लिए विशिष्ट कारणों सहित कोई प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जाए, तो अन्वेषण की निर्धारित अवधि को एक वर्ष तक बढ़ा सकता है। वर्तमान मामले में यह स्वीकार किया गया है कि लोक अभियोजक द्वारा 180 दिनों की अवधि के भीतर, विचारण न्यायालय के समक्ष, अंतिम प्रतिवेदन/अतिरिक्त शिकायत दायर करने हेतु समय-वृद्धि की मांग करते हुए कोई भी ऐसा प्रतिवेदन प्रस्तुत नहीं

किया गया। अतः अंतिम प्रतिवेदन रिमांड की प्रथम तिथि से 180 दिनों के भीतर दायर किया जाना अपेक्षित था। [कंडिका 6.2] [929-ई–एच; 930-ए]

3. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अंतर्गत अवधि की गणना करते समय, जिस दिन अभियुक्त को न्यायिक अभिरक्षा में भेजा गया हो, उस दिन को अपवर्जित किया जाएगा तथा जिस दिन चालान/आरोप-पत्र न्यायालय में दायर किया जाता है, उस दिन को सम्मिलित किया जाएगा। [कंडिका 7] [930-बी]

रवि प्रकाश सिंह उर्फ़ अरविंद सिंह बनाम बिहार राज्य, (2015) 8 एस.सी.सी. 340 : [2015] 2 एस.सी.आर. 241 — संदर्भित।

4. भारत के संविधान का अनुच्छेद 21 यह उपबंध करता है कि *"किसी व्यक्ति को उसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अतिरिक्त वंचित नहीं किया जाएगा।"* ऐसी प्रक्रिया मनमानी, अन्यायपूर्ण या अविवेकपूर्ण नहीं हो सकती। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधिनियमन का विधायी इतिहास तथा उसमें अंतर्निहित 'डिफ़ॉल्ट जमानत' का संरक्षण, अनुच्छेद 21 से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है, जो अवैध एवं मनमानी अभिरक्षा के विरुद्ध जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सुरक्षा का आश्वासन देता है। यह वस्तुतः उस संवैधानिक संरक्षण की विधायी अभिव्यक्ति है कि किसी व्यक्ति को विधि के शासन के अनुरूप ही अभिरक्षा में रखा जा सकता है। इसका अर्थानुवाद (व्याख्या) ऐसे ढंग से किया जाना चाहिए जो इस उद्देश्य की पूर्ति करे। न्यायालय, उन किसी भी प्रश्नों पर विचार करते समय, जो अनुच्छेद 21 में निहित अधिकारों को स्पर्श करते हों, कठोर या औपचारिकतावादी दृष्टिकोण नहीं अपना सकते। [कंडिका 11.1 एवं 11.6] [935-बी–सी; 938-जी]

मनेका गांधी बनाम भारत संघ, (1978) 1 एस.सी.सी. 248 : [1978] 2 एस.सी.आर. 621 — अनुसरित।

भारत के विधि आयोग की रिपोर्ट संख्या 14, न्यायिक प्रशासन में सुधार विषय पर (खंड–द्वितीय, वर्ष 1948, पृष्ठ 758–760); तथा भारत के विधि आयोग की रिपोर्ट संख्या 41, *दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 विषय पर* (खंड–प्रथम, वर्ष 1969, पृष्ठ 76–77) — संदर्भित।

5. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) को वर्तमान दंड प्रक्रिया संहिता में इस उद्देश्य से अधिनियमित किया गया कि अभियुक्त की अभिरक्षा (रिमांड) की अवधि के लिए, किए गए अपराध की गंभीरता के अनुपात में, समय-सीमाएँ निर्धारित की जा सकें; और यदि उन समय-

सीमाओं का पालन न हो, तो अभियुक्त को जमानत का अविच्छेद्य अधिकार प्राप्त हो जाता है। विधायिका का आशय यह था कि अन्वेषण पूर्ण करने हेतु पर्याप्त समय प्रदान करने की आवश्यकता और अभियुक्त की नागरिक स्वतंत्रताओं की रक्षा की आवश्यकता—इन दोनों के मध्य संतुलन स्थापित किया जाए। धारा 167(2) एक स्पष्ट वैधानिक आदेश प्रदान करती है कि अन्वेषण अभिकरण को निर्धारित समयावधि के भीतर आवश्यक साक्ष्य संकलित करने होंगे; ऐसा न होने पर अभियुक्त को आगे अभिरक्षा में नहीं रखा जा सकता। इससे यह सुनिश्चित होता है कि अन्वेषण अधिकारी अतिरिक्त अभिरक्षा की संभावना का दुरुपयोग किए बिना त्वरित एवं दक्षतापूर्वक कार्य करने के लिए बाध्य हों। यह भी सुनिश्चित होता है कि अपराध की सूचना दिए जाने की तिथि से न्यायालय द्वारा वाद का संज्ञान किसी अनावश्यक विलंब के बिना लिया जाए, जिससे समाज का आपराधिक न्याय प्रणाली पर विश्वास बना रहे और उसके प्रति निराशा अथवा निंदकता उत्पन्न न हो। [कंडिका 11.5] [936-जी–एच; 937-ए–सी]

6. किसी दंडात्मक विधि की व्याख्या में यदि कोई अस्पष्टता उत्पन्न होती है, तो न्यायालयों को वह व्याख्या अपनानी चाहिए जो अभियुक्त के अधिकारों की सुरक्षा की ओर झुकाव रखती हो, क्योंकि व्यक्ति अभियुक्त और राज्य की यांत्रिक व्यवस्था के बीच शक्ति का असंतुलन सर्वविदित है। यह सिद्धांत केवल वस्तुगत दंडात्मक विधियों के मामलों में ही नहीं, बल्कि उन प्रक्रियात्मक उपबंधों के मामलों में भी समान रूप से लागू होता है, जो अभियुक्त की स्वतंत्रता में कटौती का प्रावधान करते हैं। अभियुक्त का स्वतंत्र किए जाने का अधिकार, राज्य के अन्वेषण जारी रखने एवं आरोप-पत्र प्रस्तुत करने के अधिकार पर प्राथमिकता रखता है। [कंडिका 11.7 एवं 11.8] [939-ए–सी]

7. विशेष रूप से दंड प्रक्रिया संहिता के संदर्भ में, उद्देश्यों और कारणों का विवरण विधियों की व्याख्या हेतु एक महत्वपूर्ण सहायक साधन है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) की व्याख्या करते समय विधायिका द्वारा अभिव्यक्त त्रिस्तरीय उद्देश्यों को ध्यान में रखा जाना आवश्यक है, अर्थात्— निष्पक्ष विचारण सुनिश्चित करना, त्वरित अन्वेषण एवं विचारण, तथा ऐसी युक्तिसंगत प्रक्रिया निर्धारित करना, जो समाज के निर्धन वर्गों के हितों की रक्षा करे। ये सभी उद्देश्य, वस्तुतः भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत प्रत्याभूत मौलिक अधिकार के व्यापक संरक्षण के ही उप-समुच्चय हैं। [कंडिका 11.8] [939-डी]

8. न्यायालय, यह विचार किए बिना कि अभियुक्त जमानत देने के लिए तैयार है या नहीं, *स्वप्रेरणा* से जमानत प्रदान नहीं कर सकता। यह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) में

अंतर्निहित एक अंतःस्थ सुरक्षा उपाय है, जिसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि अभियुक्त को न्यायालय की संतुष्टि प्राप्त किए बिना अभिरक्षा से स्वतः मुक्त न किया जाए, कि वह आगे के अन्वेषण अथवा, यथास्थिति, विचारण के लिए अपनी उपस्थिति सुनिश्चित कर सकेगा। ऐसी दुर्लभ परिस्थितियाँ भी हो सकती हैं, जिनमें अभियुक्त रिमांड से बाहर अपनी व्यक्तिगत सुरक्षा को खतरा होने के कारण अथवा किसी अन्य कारण से, स्वेच्छा से जमानत के अपने अधिकार का परित्याग कर दे। एक बार आरोप-पत्र दायर हो जाने के पश्चात, अभियुक्त द्वारा किया गया ऐसा अधिकार-परित्याग अंतिम हो जाता है और तब दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) का अनुप्रयोग समाप्त हो जाता है। [कंडिका 12.4] [942-सी–ई]

9. यह नहीं कहा जा सकता कि जहाँ अभियुक्त ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अंतर्गत अपने अधिकार का तत्काल प्रयोग कर लिया हो और जमानत देने की अपनी तत्परता भी प्रकट कर दी हो, वहाँ उसके जमानत आवेदन के निस्तारण में हुई देरी अथवा उसके त्रुटिपूर्ण अस्वीकार के कारण उसे जमानत से वंचित किया जा सकता है। न ही अभियुक्त को केवल इस कारण अभिरक्षा में निरुद्ध रखा जा सकता है कि अभियोजन द्वारा उसी दिन, जिस दिन जमानत आवेदन दायर किया गया हो, पुलिस प्रतिवेदन या अतिरिक्त शिकायत दायर करने का उपायगत बहाना अपनाया गया हो। [कंडिका 12.4] [942-एफ]

10. "उपभोग किया गया" पदबंध की यह व्याख्या कि आवश्यक जमानत देने के पश्चात ही वास्तविक रिहाई होने पर ही अधिकार का उपभोग माना जाएगा, अभियुक्त के साथ गंभीर अन्याय करेगी तथा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के परंतुक के मूल उद्देश्य को ही विफल कर देगी। ऐसे अनेक अवसर हो सकते हैं, जब लोक अभियोजक जमानत आवेदन की सुनवाई को लंबित बनाए रखे, जिससे मध्यावधि में राज्य को अतिरिक्त शिकायत या अन्वेषण प्रतिवेदन न्यायालय के समक्ष दायर करने का अवसर मिल सके। कुछ मामलों में, किसी कारणवश, न्यायालय द्वारा भी प्रक्रिया में विलंब हो सकता है। ऐसी स्थिति में, अभियुक्त का अपने पक्ष में जमानत आदेश प्राप्त करने का अविच्छेद्य अधिकार निष्फल हो जाएगा। यह विधायिका का अभिप्राय नहीं हो सकता। यदि ऐसी प्रथा को अनुमति दी जाए, तो वह अवैध अभिरक्षा को वैध मान लेने के समान होगी। निर्धारित अवधि की समाप्ति के पश्चात, न्यायालय के पास अभियुक्त को आगे अभिरक्षा में भेजने का कोई क्षेत्राधिकार शेष नहीं रहता। अभियोजन को, निर्धारित अवधि के भीतर अभियुक्त के विरुद्ध अन्वेषण प्रतिवेदन/शिकायत दायर न करने की अपनी ही

चूक का लाभ उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती। [कंडिका 12.5] [942-जी–एच; 943-ए–सी]

11. सावधानी स्वरूप, अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता के साथ-साथ दंडाधिकारी का भी यह दायित्व है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अंतर्गत अभियुक्त को प्राप्त होने वाले अविच्छेद्य अधिकार की उपलब्धता के विषय में, अधिकार के उत्पन्न होते ही, बिना किसी विलंब के अभियुक्त को सूचित करें। यह विशेष रूप से उन परिस्थितियों में आवश्यक है, जहाँ अभियुक्त समाज के वंचित वर्ग से संबंधित हो और उसे अपने विधिक अधिकारों की जानकारी उपलब्ध होने की संभावना कम हो। दंडाधिकारियों द्वारा इस प्रकार का अधिकार-ज्ञान साझा किया जाना, अभियोजन द्वारा अपनाई जा सकने वाली विलंबकारी युक्तियों को निष्फल करेगा तथा यह भी सुनिश्चित करेगा कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत निहित दायित्वों तथा दंड प्रक्रिया संहिता के उद्देश्यों और कारणों के विवरण में उल्लिखित आशयों का समुचित पालन हो। अनुच्छेद 12.7] [943-जी–एच; 944-ए–बी]

*राकेश कुमार पॉल बनाम असम राज्य, (*2017) 15 एस.सी.सी. 67 : [2017] 8 एस.सी.आर. 785 —अवलंबन किया गया।

12. यह सत्य है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के स्पष्टीकरण-I में यह उपबंध है कि जब तक अभियुक्त जमानत प्रस्तुत नहीं करता, तब तक उसे अभिरक्षा में निरुद्ध रखा जाएगा। तथापि, धारा 167(2) का स्पष्टीकरण-I केवल उन्हीं परिस्थितियों में लागू होता है, जहाँ अभियुक्त ने डिफ़ॉल्ट जमानत के अपने अधिकार का उपभोग कर लिया हो तथा न्यायालय के निर्देशानुसार जमानत प्रस्तुत करने का दायित्व स्वीकार किया हो, किंतु तत्पश्चात न्यायालय द्वारा निर्धारित अवधि के भीतर जमानत आदेश की शर्तों का पालन करने में विफल रहा हो। ऐसी स्थिति में, यदि अभियोजन बाद में आरोप-पत्र दायर कर देता है, तो यह कहा जा सकता है कि अभियुक्त ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अंतर्गत प्राप्त जमानत के अपने अधिकार का परित्याग कर दिया है। स्पष्टीकरण-I का उद्देश्य मात्र यह सुनिश्चित करना है कि अभियुक्त को जमानत आदेश का अनुपालन किए बिना तत्क्षण अभिरक्षा से मुक्त न किया जाए। [कंडिका 13] [944-बी–डी]

13. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) तथा उसके स्पष्टीकरण-I में प्रयुक्त पदबंध "अभियुक्त जमानत प्रस्तुत करता है" की यह व्याख्या नहीं की जा सकती कि यदि अभियुक्त तैयार और इच्छुक होने के बावजूद, केवल इस कारण जमानत प्रस्तुत न कर सका कि उसका

जमानत आवेदन दंडाधिकारी के समक्ष लंबित था, अथवा उसके जमानत आवेदन की अस्वीकृति के विरुद्ध चुनौती उच्चतर मंच के समक्ष लंबित थी, तो उसकी निरंतर अभिरक्षा वैध मानी जाएगी। यदि ऐसी व्याख्या स्वीकार कर ली जाए, तो धारा 167(2) के परंतुक का अनुप्रयोग अत्यंत सीमित होकर केवल उन्हीं मामलों तक सिमट जाएगा, जहाँ दंडाधिकारी जमानत आवेदन प्रस्तुत होते ही तत्काल उसका निस्तारण कर सके; जो कि न्यायालयों में मामलों की अधिकता अथवा अन्य कारणों से कई बार व्यावहारिक रूप से संभव नहीं होता। इसके अतिरिक्त, जमानत आवेदन का निर्णय लोक अभियोजक को सूचना दिए जाने के पश्चात ही किया जाना अपेक्षित होता है। परंतुक की ऐसी कठोर व्याख्या अभियुक्त के अधिकारों को निष्फल कर देगी। अतः अभियुक्त को जमानत पर मुक्त किए जाने के उसके अधिकार से केवल इस आधार पर वंचित नहीं किया जा सकता कि जमानत प्रस्तुत किए जाने से पूर्व अभियोजन द्वारा आरोप-पत्र दायर कर दिया गया हो और जमानत की शर्तों, यथा जमानती बंध-पत्रों की प्रस्तुति, का पालन बाद में होना शेष हो; बशर्ते कि अभियुक्त न्यायालय द्वारा निर्धारित अवधि के भीतर जमानत प्रस्तुत कर दे। [कंडिका 13.1] [944-ई–एच]

14. **हितेंद्र विष्णु ठाकुर तथा संजय दत्त*** के वादों में की गई वे टिप्पणियाँ, जिनके अनुसार डिफ़ॉल्ट जमानत हेतु आवेदन और लोक अभियोजक द्वारा समय-वृद्धि के लिए प्रस्तुत आवेदन—दोनों पर एक साथ विचार किया जाना चाहिए, केवल उन्हीं परिस्थितियों में लागू होती हैं, जहाँ अभियुक्त द्वारा डिफ़ॉल्ट जमानत का आवेदन दायर किए जाने से पूर्व ही लोक अभियोजक ने समय-वृद्धि की मांग करते हुए प्रतिवेदन प्रस्तुत कर दिया हो। ऐसी स्थिति में, अन्वेषण पूर्ण करने की अवधि समाप्त हो जाने के बावजूद, दोनों आवेदनों पर एक साथ विचार करना आवश्यक होगा। तथापि, जहाँ अभियुक्त पहले ही डिफ़ॉल्ट जमानत हेतु आवेदन प्रस्तुत कर चुका हो, वहाँ लोक अभियोजक उसके अविच्छेद्य अधिकार के प्रवर्तन को, तत्पश्चात अंतिम प्रतिवेदन, अतिरिक्त शिकायत, अथवा समय-वृद्धि की मांग वाला कोई प्रतिवेदन दायर करके, विफल नहीं कर सकता। [कंडिका 14.1] [946-बी–सी]

15. यह विधि द्वारा सुव्यवस्थित सिद्धांत है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के परंतुक के अंतर्गत दायर डिफ़ॉल्ट जमानत आवेदन पर राज्य को सूचना जारी किए जाने का उद्देश्य मात्र यह होता है कि लोक अभियोजक न्यायालय को यह संतुष्ट कर सके कि — अभियोजन द्वारा न्यायालय से समय-वृद्धि का आदेश पहले ही प्राप्त कर लिया गया है; अथवा निर्धारित अवधि की समाप्ति से पूर्व नामित न्यायालय में चालान दायर कर दिया गया है; अथवा

निर्धारित अवधि वास्तव में समाप्त ही नहीं हुई है। इस प्रकार की सूचना जारी किए जाने से यह संभावना टल जाती है कि अभियुक्त कुछ तथ्यों को जानबूझकर या अनजाने में छिपाकर डिफ़ॉल्ट जमानत प्राप्त कर ले, तथा इससे कार्यवाहियों की बहुलता से भी संरक्षण मिलता है। तथापि, लोक अभियोजकों को यह अनुमति नहीं दी जा सकती कि वे धारा 167(2) के अंतर्गत दायर जमानत आवेदनों पर न्यायालय द्वारा जारी सीमित सूचना का दुरुपयोग करते हुए, कार्यवाही को अनावश्यक रूप से लंबित रखें, अथवा अतिरिक्त समय "खरीदने" के उद्देश्य से बाद के आवेदन/प्रतिवेदन दायर करें, जिससे अन्वेषण अभिकरण द्वारा अन्वेषण में रह गई कमियों को भरने में सुविधा हो सके। [कंडिका 14.2] [946-डी–एफ]

16. ***संजय दत्त* वाद में दिया गया निर्णय केवल एक सावधानात्मक सिद्धांत स्थापित करता है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अंतर्गत अभियुक्त को प्राप्त होने वाला अधिकार जैसे ही उत्पन्न हो, उसे तत्काल डिफ़ॉल्ट जमानत हेतु आवेदन करना चाहिए। यदि अभियुक्त ऐसा करने में विफल रहता है, तो अभियोजन द्वारा आरोप-पत्र दायर किए जाने के पश्चात वह कार्यवाही के किसी बाद के चरण में इस अधिकार का दावा नहीं कर सकता। निर्णय में प्रयुक्त वाक्यांश— *"जब ऐसा अधिकार उत्पन्न हो चुका था, उस समय आवेदन न करने के कारण, वह बाद के चरण में उस अधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता" — इस बात को स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि अभियुक्त जैसे ही जमानत हेतु आवेदन करता है, उसे जमानत के अपने अधिकार का उपभोग किया हुआ माना जाएगा। [कंडिका 15.1] [948-बी–सी]*

17. जैसे ही अभियुक्त धारा 167(2) के परंतुक के अंतर्गत जमानत हेतु आवेदन प्रस्तुत करता है, उसे डिफ़ॉल्ट जमानत पर मुक्त किए जाने के अपने अधिकार का "उपभोग किया हुआ" अथवा उसका प्रवर्तन किया हुआ माना जाएगा, जो कि अन्वेषण हेतु निर्धारित समय-सीमा की समाप्ति के पश्चात उत्पन्न होता है। अतः यदि अभियुक्त, यथास्थिति, 180 दिनों की अवधि अथवा विस्तारित अवधि की समाप्ति के पश्चात दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2), सहपठित धारा 36-ए(4), स्वापक औषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम के अंतर्गत जमानत हेतु आवेदन करता है, तो न्यायालय को लोक अभियोजक से आवश्यक सूचना प्राप्त करने के पश्चात, किसी भी अनावश्यक विलंब के बिना, उसे तत्काल जमानत पर मुक्त करना होगा। ऐसी तत्पर कार्रवाई अभियोजन को इस बात से प्रतिबंधित करेगी कि वह अन्वेषण अभिकरण की चूक की स्थिति में अभियुक्त को जमानत पर मुक्त किए जाने संबंधी विधायी आदेश को निष्फल कर सके। [कंडिका 18.1] [954-सी–ई]

18. डिफ़ॉल्ट जमानत पर मुक्त किए जाने का अधिकार उस स्थिति में भी प्रवर्तनीय बना रहता है, जब अभियुक्त ने ऐसी जमानत हेतु आवेदन प्रस्तुत कर दिया हो — भले ही जमानत आवेदन लंबित हो; अथवा अभियोजन द्वारा न्यायालय के समक्ष बाद में आरोप-पत्र दायर कर दिया गया हो, या समय-वृद्धि की मांग वाला कोई प्रतिवेदन प्रस्तुत किया गया हो; अथवा उस मध्यावधि में, जब जमानत आवेदन की अस्वीकृति के विरुद्ध चुनौती उच्चतर न्यायालय के समक्ष लंबित हो, आरोप-पत्र दायर कर दिया गया हो। [कंडिका 18.2] [954-ई–एफ]

19. तथापि, जहाँ अभियुक्त अपने अधिकार के उत्पन्न होने के समय डिफ़ॉल्ट जमानत हेतु आवेदन प्रस्तुत करने में विफल रहता है, और तत्पश्चात दंडाधिकारी के समक्ष आरोप-पत्र, अतिरिक्त शिकायत अथवा समय-वृद्धि की मांग वाला प्रतिवेदन प्रस्तुत कर दिया जाता है, वहाँ डिफ़ॉल्ट जमानत का अधिकार समाप्त हो जाता है। ऐसी स्थिति में, दंडाधिकारी, यथास्थिति, वाद का संज्ञान लेने अथवा अन्वेषण पूर्ण करने हेतु अतिरिक्त समय प्रदान करने के लिए स्वतंत्र होगा; यद्यपि अभियुक्त को दंड प्रक्रिया संहिता के अन्य उपबंधों के अंतर्गत जमानत पर मुक्त किया जाना संभव रहेगा। [कंडिका 18.3] [954-जी–एच]

20. न्यायालय द्वारा डिफ़ॉल्ट जमानत का आदेश पारित किए जाने के उपरांत भी, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के स्पष्टीकरण-I के प्रभाव से, अभियुक्त की वास्तविक रिहाई उस सक्षम न्यायालय द्वारा जमानत प्रदान करते समय दिए गए निर्देशों पर निर्भर करती है। यदि अभियुक्त न्यायालय द्वारा निर्धारित अवधि के भीतर जमानत प्रस्तुत करने में असफल रहता है और/अथवा जमानत आदेश की शर्तों का पालन नहीं करता है, तो उसकी निरंतर अभिरक्षा विधिसंगत मानी जाएगी। [कंडिका 18.4] [955-ए–बी]

21.1 वर्तमान मामले में, यह निर्विवाद है कि अपीलकर्ता–अभियुक्त ने गिरफ्तारी के 181वें दिन, अर्थात् 01.02.2019 को, न्यायालय के खुलते ही प्रातः 10:30 बजे, जमानत हेतु आवेदन दायर कर जमानत प्राप्त करने के अपने विकल्प का प्रयोग किया था। यह भी विवादित नहीं है कि लोक अभियोजक ने 31.01.2019 से पूर्व अथवा 01.02.2019 को प्रातः 10:30 बजे से पूर्व, अपराध के अन्वेषण हेतु समय-वृद्धि की मांग करते हुए कोई आवेदन प्रस्तुत नहीं किया था। लोक अभियोजक ने जमानत आवेदन पर उसी दिन अपराह्न 4:25 बजे तक हुई बहस में भाग लिया। इसके पश्चात ही अपीलकर्ता के विरुद्ध अतिरिक्त शिकायत दायर की गई। अतः, अपीलकर्ता–अभियुक्त को, जमानत पर मुक्त किए जाने हेतु आवेदन दायर करते ही तथा जमानत आदेश की शर्तों का पालन करने की तत्परता व्यक्त करते ही, अर्थात् 01.02.2019 को प्रातः

10:30 बजे, जमानत के अपने अविच्छेद्य अधिकार का उपभोग किया हुआ माना जाएगा। अतः, बाद में अतिरिक्त शिकायत दायर किए जाने के बावजूद, वह जमानत पर मुक्त किए जाने का अधिकारी था। [कंडिका 17] [953-बी–ई]

21.2 वर्तमान मामले में, विचारण न्यायालय द्वारा निर्देशित अनुसार जमानती प्रस्तुत करने के अतिरिक्त, अपीलकर्ता–अभियुक्त को अपना पासपोर्ट समर्पित करना होगा; अन्वेषण के प्रयोजनों हेतु, जब भी आवश्यकता हो, उत्तरदाता निदेशालय के समक्ष उपस्थित होने का वचन देना होगा; तथा विचारण न्यायालय की अनुमति के बिना चेन्नई नगर-सीमा से बाहर न जाने का वचन भी देना होगा। [कंडिका 19] [955-सी]

*राकेश कुमार पॉल बनाम असम राज्य, (***2017) 15 एस.सी.सी. 67 : [2017] 8 एस.सी.आर. 785***; एस. कासी बनाम राज्य (समयनल्लूर थाना, मदुरै जिला के निरीक्षक के माध्यम से),* **(2020) एस.सी.सी. ऑनलाइन उच्चतम न्यायालय 529;** *उदय मोहनलाल आचार्य बनाम महाराष्ट्र राज्य,* **(2001) 5 एस.सी.सी. 453 : [2001] 2 एस.सी.आर. 878;** *मोहम्मद इक़बाल मदर शेख बनाम महाराष्ट्र राज्य,* **(1996) 1 एस.सी.सी. 722 : [1996] 1 एस.सी.आर. 183;** *डॉ. बिपिन शांतिलाल पंचाल बनाम गुजरात राज्य,* **(1996) 1 एस.सी.सी. 718 : [1996] 1 एस.सी.आर. 193;** *केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के माध्यम से राज्य बनाम मोहम्मद अशरफ़ भट्ट,* **(1996) 1 एस.सी.सी. 432 : [1995] 6 परिशिष्ट एस.सी.आर. 300;** *अतीफ़ नसीर मुल्ला बनाम महाराष्ट्र राज्य, (***2005) 7 एस.सी.सी. 29 : [2005] 2 परिशिष्ट एस.सी.आर. 919;** *मुस्ताक़ अहमद मोहम्मद इसाक बनाम महाराष्ट्र राज्य,* **(2009) 7 एस.सी.सी. 480 : [2009] 8 एस.सी.आर. 465;** *सैयद मोहम्मद अहमद काज़मी बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार), **(2012) 12 एस.सी.सी. 1 : [2012] 9 एस.सी.आर. 836;** भारत संघ बनाम निराला यादव,* **(2014) 9 एस.सी.सी. 457 : [2014] 6 एस.सी.आर. 148***;* **बिक्रमजीत सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2020) एस.सी.सी. ऑनलाइन उच चतम न्यायालय 824 — अवलंबन किया गया।**

प्रज्ञा सिंह ठाकुर बनाम महाराष्ट्र राज्य, **(2011) 10 एस.सी.सी. 445 : [2011] 14 एस.सी.आर. 617 — अवधानाभाव में निर्णयित माना गया।**

उदय मोहनलाल आचार्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, **(2001) 5 एस.सी.सी. 453 : [2001] 2 एस.सी.आर. 878**; *संजय दत्त बनाम राज्य (केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के माध्यम से),*21 **(1994) 5 एस.सी.सी. 410 : [1994] 3 पूरक एस.सी.आर. 263;** *हितेंद्र विष्णु ठाकुर बनाम महाराष्ट्र राज्य,* **(1994) 4 एस.सी.सी. 602 : [1994] 1 पूरक एस.सी.आर. 360;** *केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के माध्यम से राज्य बनाम मोहम्मद अशरफ़ भट्ट,* **(1996) 1 एस.सी.सी. 432 : [1995] 6 पूरक एस.सी.आर. 300;** *डॉ. बिपिन शांतिलाल पंचाल बनाम गुजरात राज्य,* **(1996) 1 एस.सी.सी. 718 : [1996] 1 एस.सी.आर. 193;** *मोहम्मद इक़बाल मदर शेख बनाम महाराष्ट्र राज्य,* **(1996) 1 एस.सी.सी. 722 : [1996] 1 एस.सी.आर. 183 — संदर्भित।**

नज़ीर संदर्भ:

[2015] 2 एस.सी.आर. 241 –	संदर्भित –	कंडिका 7
[2001] 2 एस.सी.आर. 878 –	संदर्भित –	कंडिका 10
[1994] 3 पूरक एस.सी.आर. 263 –	संदर्भित –	कंडिका 10
[1994] 1 पूरक एस.सी.आर. 360 –	संदर्भित –	कंडिका 10
[1995] 6 पूरक एस.सी.आर. 300 –	संदर्भित –	कंडिका 10
[1996] 1 एस.सी.आर. 193 –	संदर्भित –	कंडिका 10
[1996] 1 एस.सी.आर. 183 –	संदर्भित –	कंडिका 10
[1978] 2 एस.सी.आर. 621 –	अनुसरण किया गया –	कंडिका 11.1
[2017] 8 एस.सी.आर. 785 –	अवलंबन किया गया –	कंडिका 11.6
[2001] 2 एस.सी.आर. 878 –	अवलंबन किया गया –	कंडिका 12.6
[2017] 8 एस.सी.आर. 785 –	अवलंबन किया गया –	कंडिका 12.7
[1996] 1 एस.सी.आर. 183 –	अवलंबन किया गया –	कंडिका 15
[1996] 1 एस.सी.आर. 193 –	अवलंबन किया गया –	कंडिका 15.1
[1995] 6 पूरक एस.सी.आर. 300 –	अवलंबन किया गया –	कंडिका 15.2
[2005] 2 पूरक एस.सी.आर. 919 –	अवलंबन किया गया –	कंडिका 15.2
[2009] 8 एस.सी.आर. 465 –	अवलंबन किया गया –	कंडिका 15.2
[2012] 9 एस.सी.आर. 836 –	अवलंबन किया गया –	कंडिका 15.3

[2014] 6 एस.सी.आर. 148 – अवलंबन किया गया – कंडिका 15.4

[2011] 14 एस.सी.आर. 617 – अवधानाभाव में निर्णयित माना गया – कंडिका 16

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार : 2020 की आपराधिक अपील संख्या 699

मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 21.11.2019 को पारित निर्णय एवं आदेश, आपराधिक मूल याचिका संख्या 9750/2019 से उद्भूत।

अमन लेखी, अपर सॉलिसिटर जनरल, सुश्री अरुणिमा सिंह, के. पारी वेंधन, रूपेश कुमार, अभिषेक कुमार, पीयूष बेरीवाल, उज्ज्वल सिन्हा, बी. कृष्ण प्रसाद— उपस्थित पक्षकारों की ओर से अधिवक्ता।

न्यायालय का निर्णय

माननीय न्यायमूर्ति श्री मोहन एम. शंतनगौड़र द्वारा प्रदत्त।

1. अनुमति प्रदान की जाती है।

2. मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा आपराधिक मूल याचिका संख्या 9750/2019 में दिनांक 21.11.2019 को पारित निर्णय को इस अपील में चुनौती के अधीन लाया गया है।

3. इस अपील की ओर ले जाने वाले संक्षिप्त तथ्य निम्नलिखित हैं —

3.1 अपीलकर्ता को दिनांक 04.08.2018 को कथित अपराध के संबंध में गिरफ्तार कर न्यायिक अभिरक्षा में भेजा गया, जो स्वापक औषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 की धारा 8(ग) सहपठित धाराएँ 22(ग), 23(ग), 25-क तथा 29 के अंतर्गत दंडनीय बताया गया। रिमांड की तिथि से 180 दिनों की अवधि पूर्ण होने के पश्चात, अर्थात् 31.01.2019 को, अपीलकर्ता (अभियुक्त संख्या 11) ने इस आधार पर कि अन्वेषण पूर्ण नहीं हुआ है तथा आरोप-पत्र अभी तक दायर नहीं किया गया है, दिनांक 01.02.2019 को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अंतर्गत जमानत हेतु आवेदन चेन्नई स्थित स्वापक औषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम के अंतर्गत मामलों के विशेष विचारण हेतु गठित विशेष न्यायालय (विचारण न्यायालय) के समक्ष प्रस्तुत किया। तदनुसार, दिनांक 05.02.2019 को, उक्त विचारण न्यायालय ने अपने समक्ष लंबित आर.आर. संख्या 09/2017 में आपराधिक विविध आवेदन संख्या 131/2019 में जमानत का आदेश पारित किया।

3.2 उत्तरदाता/शिकायतकर्ता, अर्थात् राजस्व आसूचना निदेशालय के आसूचना अधिकारी, ने अपीलकर्ता की जमानत निरस्त किए जाने की प्रार्थना करते हुए मद्रास उच्च न्यायालय के समक्ष आपराधिक मूल याचिका संख्या 9750/2019 दायर की। आक्षेपित निर्णय द्वारा उच्च

न्यायालय ने उक्त याचिका स्वीकार कर ली और परिणामस्वरूप विचारण न्यायालय द्वारा प्रदान की गई जमानत के आदेश को निरस्त कर दिया। इससे व्यथित होकर अपीलकर्ता ने उच्च न्यायालय के निर्णय को चुनौती देते हुए इस न्यायालय का दरवाज़ा खटखटाया है।

3.3 यह विवादित नहीं है कि अपीलकर्ता को दिनांक 04.08.2018 को न्यायिक अभिरक्षा में भेजा गया था; अतः दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अंतर्गत अंतिम प्रतिवेदन दायर किए जाने हेतु निर्धारित अनिवार्य 180 दिनों की अवधि (रिमांड की तिथि को अपवर्जित करते हुए) 31.01.2019 को पूर्ण हो गई थी। यह तथ्य ग्रेगोरियन पंचांग के अनुसार दिनों की गणना से स्पष्ट रूप से प्रतिपादित होता है, जैसा कि नीचे दर्शाया गया है—

अगस्त, 2018 (दिनांक 05.08.2018 से 31.08.2018 तक)	— 27 दिन
सितंबर, 2018	— 30 दिन
अक्टूबर, 2018	— 31 दिन
नवंबर, 2018	— 30 दिन
दिसंबर, 2018	— 31 दिन
जनवरी, 2019	— 31 दिन
कुल	— 180 दिन

3.4 तदनुसार, अपीलकर्ता ने दिनांक 01.02.2019 को प्रातः 10:30 बजे विचारण न्यायालय के समक्ष जमानत हेतु आवेदन प्रस्तुत किया। जमानत आवेदन की सुनवाई के दौरान —विशेष रूप से, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की ओर से बहस पूर्ण हो जाने के पश्चात— उत्तरदाता/शिकायतकर्ता ने दिनांक 01.02.2019 को अपराह्न 4:25 बजे अपीलकर्ता के विरुद्ध एक अतिरिक्त शिकायत दायर की और उसी आधार पर जमानत याचिका को निरस्त किए जाने की प्रार्थना की। तथापि, विचारण न्यायालय ने यह आधार ग्रहण करते हुए जमानत आवेदन स्वीकार कर लिया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के विधायी आदेश द्वारा अपीलकर्ता को प्रदत्त अविच्छेद्य अधिकार में हस्तक्षेप करने की शक्ति न्यायालय को प्राप्त नहीं है।

3.5 उपर्युक्त विचारण न्यायालय के निर्णय को उच्च न्यायालय ने इस आधार पर निरस्त कर दिया कि अतिरिक्त शिकायत दिनांक 01.02.2019 को ही दायर की गई थी और चूँकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अंतर्गत दायर जमानत आवेदन का निस्तारण अतिरिक्त शिकायत दायर किए जाने तक नहीं हो पाया था, इसलिए अपीलकर्ता इस तथ्य का लाभ नहीं

उठा सकता कि उसने अपना जमानत आवेदन पूर्व समय पर दायर किया था। उच्च न्यायालय ने आगे यह भी प्रतिपादित किया कि सत्र न्यायालय उस समय से कार्य करता है जब वह बैठता है और उस समय तक जब वह उठता है; अतः इस कारण से भी अपीलकर्ता को प्रातः 10:30 बजे आवेदन दायर किए जाने का कोई विशेष लाभ नहीं मिल सकता, क्योंकि अतिरिक्त शिकायत जमानत आवेदन की सुनवाई के दौरान, न्यायालय के उस दिन उठने से पूर्व, दायर की गई थी।

4. अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, सुश्री अरुणिमा सिंह, अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के माध्यम से हमें अवगत कराते हुए तथा इस न्यायालय के निर्णय उदय ***मोहनलाल आचार्य बनाम महाराष्ट्र राज्य,*** (2001) 5 एस.सी.सी. 453 पर व्यापक रूप से आश्रित रहते हुए, यह तर्क प्रस्तुत किया कि उच्च न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) में निहित विधायी आदेश का गलत अर्थानुवाद किया है तथा वाद के गुण-दोष में प्रवेश कर गंभीर त्रुटि की है; कि धारा 167(2) दंड प्रक्रिया संहिता द्वारा प्रदत्त विधायी आदेश को उच्च न्यायालय ने हल्के में नज़रअंदाज़ कर दिया, जबकि अपीलकर्ता ने अनिवार्य 180 दिनों की अवधि पूर्ण होने के पश्चात, वह भी उत्तरदाता द्वारा आरोप-पत्र/अतिरिक्त शिकायत दायर किए जाने से पूर्व, उक्त उपबंधों का विधिसम्मत रूप से आह्वान किया था; तथा यह कि अन्वेषण प्राधिकरण द्वारा बाद में आरोप-पत्र/अतिरिक्त शिकायत दायर किया जाना, अपीलकर्ता के अविच्छेद्य अधिकार को निष्फल नहीं कर सकता।

5. इसके विपरीत, अपीलकर्ता के विरुद्ध उच्च न्यायालय के निर्णय के समर्थन में, अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल, श्री अमन लेखी, ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि अतिरिक्त शिकायत उस समय दायर की गई थी जब अपीलकर्ता–अभियुक्त अभी भी अभिरक्षा में था तथा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अंतर्गत दायर जमानत आवेदन के निस्तारण से पूर्व ही उक्त शिकायत प्रस्तुत कर दी गई थी; अतः अपीलकर्ता–अभियुक्त द्वारा जमानत प्रस्तुत किए जाने का कोई प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता, और परिणामस्वरूप वह निरंतर अभिरक्षा में रखे जाने का दायी था। उन्होंने आगे यह प्रतिपादित किया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अंतर्गत दायर जमानत आवेदन के निस्तारण की तिथि अथवा समय ही वह निर्णायक तत्व है, जिसके आधार पर यह तय किया जाना चाहिए कि अभियुक्त डिफ़ॉल्ट जमानत का अधिकारी है अथवा नहीं।

6. आगे बढ़ने से पूर्व, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के उपबंधों का उल्लेख करना प्रासंगिक है—

"धारा 167 — जब अन्वेषण चौबीस घंटे में पूर्ण नहीं किया जा सकता, तब अपनाई जाने वाली प्रक्रिया। —

(2) इस धारा के अंतर्गत जिस दंडाधिकारी के समक्ष किसी अभियुक्त को भेजा जाता है, वह—चाहे उसे वाद का विचारण करने का क्षेत्राधिकार हो या न हो—समय-समय पर, अपनी समझ के अनुसार, अभियुक्त को ऐसी अभिरक्षा में निरुद्ध रखने का प्राधिकार दे सकता है, जिसकी कुल अवधि पंद्रह दिनों से अधिक नहीं होगी; और यदि उसे वाद का विचारण करने या विचारण हेतु अभ्यर्पित करने का क्षेत्राधिकार न हो तथा वह आगे की अभिरक्षा को अनावश्यक समझे, तो वह अभियुक्त को उस दंडाधिकारी के समक्ष भेजे जाने का आदेश दे सकता है, जिसे ऐसा क्षेत्राधिकार प्राप्त हो।"

परंतु यह कि—

(क) दंडाधिकारी, यदि वह इस बात से संतुष्ट हो कि ऐसा करने के लिए पर्याप्त आधार विद्यमान हैं, तो पंद्रह दिनों की अवधि से परे, अभियुक्त को पुलिस अभिरक्षा के अतिरिक्त अन्य अभिरक्षा में निरुद्ध रखने का प्राधिकार दे सकता है; किंतु कोई भी दंडाधिकारी इस उपखंड के अंतर्गत अभियुक्त को कुल मिलाकर निम्नलिखित अवधि से अधिक अभिरक्षा में निरुद्ध रखने का प्राधिकार नहीं देगा—

(i) नब्बे दिन, जहाँ अन्वेषण ऐसे अपराध से संबंधित हो जो मृत्युदंड, आजीवन कारावास, अथवा दस वर्ष से कम न होने वाले कारावास से दंडनीय हो;

(ii) साठ दिन, जहाँ अन्वेषण किसी अन्य अपराध से संबंधित हो;

और उक्त नब्बे दिनों अथवा साठ दिनों की अवधि की समाप्ति पर, यथास्थिति, यदि अभियुक्त जमानत देने के लिए तैयार हो और जमानत प्रस्तुत करता है, तो उसे जमानत पर मुक्त किया जाएगा; तथा इस उपखंड के अंतर्गत जमानत पर मुक्त किया गया प्रत्येक व्यक्ति, उस अध्याय के प्रयोजनों के लिए, अध्याय तैंतीस के उपबंधों के अंतर्गत मुक्त किया गया माना जाएगा।

(ख) इस धारा के अंतर्गत कोई भी दंडाधिकारी अभियुक्त को पुलिस अभिरक्षा में निरुद्ध रखने का प्राधिकार नहीं देगा, जब तक कि अभियुक्त को प्रथम बार उसके समक्ष व्यक्तिगत रूप से प्रस्तुत न किया गया हो, और तत्पश्चात प्रत्येक बार, जब तक अभियुक्त पुलिस अभिरक्षा में रहता है; तथापि, दंडाधिकारी

न्यायिक अभिरक्षा में आगे की निरुद्धता को अभियुक्त की व्यक्तिगत प्रस्तुति द्वारा अथवा इलेक्ट्रॉनिक वीडियो संपर्क माध्यम से प्रस्तुति पर विस्तारित कर सकता है।

(ग) द्वितीय श्रेणी का कोई दंडाधिकारी, जिसे इस प्रयोजन के लिए उच्च न्यायालय द्वारा विशेष रूप से प्राधिकृत न किया गया हो, पुलिस अभिरक्षा में अभियुक्त को निरुद्ध रखने का प्राधिकार नहीं देगा।

स्पष्टीकरण–I.— संदेहों के निवारण हेतु यह घोषित किया जाता है कि खंड (क) में निर्दिष्ट अवधि की समाप्ति के बावजूद, जब तक अभियुक्त जमानत प्रस्तुत नहीं करता, तब तक उसे अभिरक्षा में निरुद्ध रखा जाएगा।

स्पष्टीकरण–II.— यदि यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या खंड (ख) के अधीन अपेक्षित रूप से अभियुक्त को दंडाधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किया गया था, तो अभियुक्त की प्रस्तुति अभिरक्षा का प्राधिकार देने वाले आदेश पर उसके हस्ताक्षर द्वारा, अथवा इलेक्ट्रॉनिक वीडियो संपर्क माध्यम से अभियुक्त की प्रस्तुति के संबंध में दंडाधिकारी द्वारा प्रमाणित आदेश के माध्यम से, यथास्थिति, सिद्ध की जा सकेगी।

परंतु यह भी कि — अठारह वर्ष से कम आयु की स्त्री के मामले में, उसकी निरुद्धता को रिमांड गृह अथवा मान्यता प्राप्त सामाजिक संस्था की अभिरक्षा में रखने का प्राधिकार दिया जाएगा।

सामान्य विधिक प्रचलन में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के परंतुक के अंतर्गत जमानत के अधिकार को प्रायः "डिफ़ॉल्ट जमानत" अथवा "अनिवार्य जमानत" कहा जाता है, क्योंकि यह जमानत अन्वेषण अभिकरण द्वारा निर्धारित अवधि के भीतर अन्वेषण पूर्ण न किए जाने की चूक के कारण प्रदान की जाती है, और यह वाद के गुण-दोष से निरपेक्ष होती है।

6.1 वर्तमान मामले के प्रयोजनार्थ स्वापक औषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 की धारा 36-ए(4) का उल्लेख करना भी प्रासंगिक है—

"धारा 36-ए — विशेष न्यायालयों द्वारा विचारणीय अपराध। —

(4) धारा 19, धारा 24 अथवा धारा 27-क के अंतर्गत दंडनीय अपराधों के संबंध में, अथवा व्यावसायिक मात्रा से संबंधित अपराधों के मामलों में, दंड प्रक्रिया

संहिता की धारा 167 के उपखंड (2) में जहाँ-जहाँ 'नब्बे दिन' का उल्लेख है, वहाँ-वहाँ उसे 'एक सौ अस्सी दिन' के रूप में समझा जाएगाः

परंतु यह कि — यदि उक्त एक सौ अस्सी दिनों की अवधि के भीतर अन्वेषण पूर्ण करना संभव न हो, तो विशेष न्यायालय, लोक अभियोजक द्वारा प्रस्तुत उस प्रतिवेदन के आधार पर, जिसमें अन्वेषण की प्रगति तथा एक सौ अस्सी दिनों की उक्त अवधि से परे अभियुक्त को अभिरक्षा में रखने के विशिष्ट कारण दर्शाए गए हों, उक्त अवधि को एक वर्ष तक बढ़ा सकता है।"

(जोर दिया गया)

6.2 स्वापक औषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 की धारा 36-ए में, उसमें उल्लिखित रूप में दंड प्रक्रिया संहिता के संशोधित अनुप्रयोग का प्रावधान किया गया है। धारा 36-ए के उपखंड (4) का प्रभाव यह है कि एन.डी.पी.एस. अधिनियम के अंतर्गत कुछ विशिष्ट अपराधों के संबंध में अन्वेषण, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) में प्रदत्त 90 दिनों के स्थान पर 180 दिनों की अवधि के भीतर पूर्ण किया जाना अपेक्षित है। इस प्रकार, अधिक गंभीर श्रेणी के अपराधों के अन्वेषण हेतु अतिरिक्त समय-सीमा का लाभ प्रदान किया गया है। इस उपबंध को एक अतिरिक्त परंतुक द्वारा और सुदृढ़ किया गया है, जिसके अनुसार विशेष न्यायालय, यदि लोक अभियोजक द्वारा ऐसा प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जाए, जिसमें अन्वेषण की प्रगति दर्शाई गई हो तथा 180 दिनों की निर्धारित अवधि से परे अभियुक्त को अभिरक्षा में रखने के विशिष्ट कारण दिए गए हों, तो अन्वेषण की निर्धारित अवधि को एक वर्ष तक बढ़ा सकता है।वर्तमान मामले में यह स्वीकार किया गया है कि लोक अभियोजक ने 180 दिनों की अवधि के भीतर, विचारण न्यायालय के समक्ष अंतिम प्रतिवेदन/अतिरिक्त शिकायत दायर किए जाने हेतु समय-वृद्धि की मांग करते हुए कोई भी ऐसा प्रतिवेदन प्रस्तुत नहीं किया था।

उपर्युक्त से यह स्पष्ट है कि अपीलकर्ता के मामले में, अंतिम प्रतिवेदन को प्रथम रिमांड की तिथि से 180 दिनों के भीतर दाखिल किया जाना अपेक्षित था।

7. इस न्यायालय ने निर्णयों की एक श्रृंखला में — जिसमें ***रवि प्रकाश सिंह उर्फ़ अरविंद सिंह बनाम बिहार राज्य***, (2015) 8 एस.सी.सी. 340 भी सम्मिलित है—यह प्रतिपादित किया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अंतर्गत अवधि की गणना करते समय, जिस दिन अभियुक्त को न्यायिक अभिरक्षा में भेजा गया हो, उस दिन को अपवर्जित किया जाएगा, तथा

जिस दिन चालान/आरोप-पत्र न्यायालय में दायर किया जाता है, उस दिन को सम्मिलित किया जाएगा।

8. जैसा कि उपर्युक्त उल्लेख किया गया है, यह विवादित नहीं है कि उपर्युक्त वैधानिक उपबंधों तथा इस न्यायालय के निर्णयों के अनुपालन में अपीलकर्ता ने रिमांड की तिथि को अपवर्जित करते हुए उससे 180 दिनों की अवधि पूर्ण होने तक प्रतीक्षा की और तत्पश्चात दिनांक 01.02.2019 को प्रातः 10:30 बजे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अंतर्गत जमानत हेतु आवेदन प्रस्तुत किया; क्योंकि 31.01.2019 तक अथवा 01.02.2019 को प्रातः 10:30 बजे तक शिकायतकर्ता द्वारा अपीलकर्ता के विरुद्ध अंतिम प्रतिवेदन/अतिरिक्त शिकायत दायर नहीं की गई थी। उसी दिन, जैसा कि उपर्युक्त वर्णित है, जमानत आवेदन की सुनवाई के दौरान, उत्तरदाता/शिकायतकर्ता ने अपराह्न 4:25 बजे एक अतिरिक्त शिकायत दायर की, और इस प्रकार जमानत याचिका को निरस्त किए जाने की प्रार्थना की।

9. अतः इस वाद में निर्णयार्थ निम्नलिखित प्रश्न उत्पन्न होते हैं—

(क) क्या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अंतर्गत अपीलकर्ता को प्राप्त होने वाला अविच्छेद्य अधिकार, अन्वेषण अभिकरण द्वारा बाद में अतिरिक्त शिकायत दायर किए जाने से समाप्त हो जाता है;

(ख) उपर्युक्त प्रश्न (क) का उत्तर देते समय, क्या न्यायालय को अन्वेषण अभिकरण की चूक के आधार पर जमानत आवेदन दायर किए जाने के समय को विचार में लेना चाहिए, अथवा जमानत आवेदन के निस्तारण के समय को।

I. उदय मोहनलाल आचार्य वाद में प्रतिपादित सिद्धांत

10. प्रासंगिक न्यायशास्त्र के अवलोकन के उपरांत, हम श्री लेखी द्वारा प्रस्तुत तर्कों से सहमत नहीं हो पाते। इसके विपरीत, हमारा यह निष्कर्ष है कि उपर्युक्त (क) तथा (ख) दोनों प्रश्नों का उत्तर इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ के बहुमत मत द्वारा ***उदय मोहनलाल आचार्य*** बनाम महाराष्ट्र राज्य वाद में पहले ही दिया जा चुका है। उक्त निर्णय में निम्नलिखित रूप से अवलोकन किया गया है—

> "13. ...यह भी स्पष्ट है कि यदि अभियुक्त ने उक्त अविच्छेद्य अधिकार का उपभोग पहले ही नहीं किया है, तो चालान दायर हो जाने पर वह अधिकार जीवित नहीं रहता अथवा प्रवर्तनीय नहीं रहता, जैसा कि संजय दत्त वाद में संविधान पीठ द्वारा प्रतिपादित किया गया है। अतः विचारार्थ जो महत्वपूर्ण प्रश्न उत्पन्न होता है, वह यह है कि 'यदि

पहले ही उपभोग न किया गया हो' इस पदबंध का वास्तविक अर्थ क्या है। क्या इसका अर्थ यह है कि अभियुक्त जमानत हेतु आवेदन दायर करे और जमानत पर मुक्त किए जाने की अपनी तत्परता व्यक्त करे, अथवा इसका अर्थ यह है कि जमानत आदेश पारित किया जाए, अभियुक्त जमानत प्रस्तुत करे और वास्तव में जमानत पर मुक्त हो? हमारे सुविचारित मत में, विधायी आदेश के अधिक अनुरूप यह मानना होगा कि अभियुक्त जैसे ही जमानत पर मुक्त किए जाने हेतु आवेदन दायर करता है और जमानत की शर्तों का पालन करने की तत्परता प्रकट करता है, उसी क्षण उसे अपने अविच्छेद्य अधिकार का उपभोग किया हुआ माना जाएगा। 'उपभोग किया गया' पदबंध की यह व्याख्या करना कि आवश्यक जमानत प्रस्तुत करने के पश्चात वास्तविक रूप से जमानत पर मुक्त होना ही अधिकार का उपभोग है, अभियुक्त के साथ गंभीर अन्याय करेगी तथा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के परंतुक के उद्देश्य को ही विफल कर देगी; और आगे चलकर अवैध अभिरक्षा को वैध बना देगी, क्योंकि निर्धारित अवधि की समाप्ति के पश्चात दंडाधिकारी के पास अभियुक्त को पुनः अभिरक्षा में भेजने का कोई क्षेत्राधिकार शेष नहीं रहता, और ऐसी अभिरक्षा किसी वैध रिमांड आदेश के अभाव में होती है। इसके अतिरिक्त, जब अभियुक्त यह दर्शाते हुए जमानत हेतु आवेदन करता है कि निर्धारित अवधि के भीतर कोई चालान दायर नहीं किया गया है, तब दंडाधिकारी के पास कोई विवेकाधिकार शेष नहीं रहता और उसे केवल यह देखना होता है कि क्या विधि द्वारा निर्धारित अवधि समाप्त हो चुकी है अथवा नहीं, तथा क्या चालान दायर किया गया है अथवा नहीं। यदि 'उपभोग किया गया' पदबंध की व्याख्या इस प्रकार की जाए कि अभियुक्त का वास्तव में जमानत पर मुक्त होना आवश्यक है, तो ऐसे मामलों में, जहाँ दंडाधिकारी अवैध रूप से जमानत आदेश पारित करने से इंकार कर देता है, जबकि धारा 167 में निर्दिष्ट अधिकतम अवधि समाप्त हो चुकी हो और फिर भी कोई चालान दायर न किया गया हो, अभियुक्त को उच्चतर मंच का सहारा लेना पड़ेगा; और यदि उस मध्यावधि में अभियोजन द्वारा आरोप-पत्र दायर कर दिया जाता है, तो अन्वेषण अभिकरण की निष्क्रियता के कारण अभियुक्त को प्राप्त हुआ यह तथाकथित अधिकार निष्फल हो जाएगा। चूँकि विधायिका ने अपना स्पष्ट आदेश दिया है, अतः उसका प्रवर्तन करना न्यायालय का अनिवार्य कर्तव्य है, और न्याय के हित में यह उपयुक्त नहीं होगा कि 'यदि उपभोग न किया गया हो' पदबंध की ऐसी व्याख्या की जाए, जिसका अभियोजन द्वारा दुरुपयोग किया जा सके ...।"

"...दंड प्रक्रिया संहिता में ऐसा कोई उपबंध नहीं है जो धारा 167 के उपखंड (2) के परंतुक में निर्दिष्ट अवधि की समाप्ति के पश्चात अभियुक्त को अभिरक्षा में निरुद्ध रखने का प्राधिकार देता हो, सिवाय उस आकस्मिक स्थिति के जो स्पष्टीकरण–I में उल्लिखित है, अर्थात् जब अभियुक्त जमानत प्रस्तुत नहीं करता। <u>इसी अर्थ में यह कहा जा सकता है कि यदि निर्धारित अवधि की समाप्ति के पश्चात जमानत पर मुक्त किए जाने हेतु आवेदन दायर किया जाता है, और अभियुक्त जमानत प्रस्तुत करने की तत्परता व्यक्त करते हुए अपने अविच्छेद्य अधिकार का उपभोग करता है, तथा तत्पश्चात कुछ शर्तों एवं प्रतिबंधों के अधीन जमानत का आदेश पारित किया जाता है, किंतु अभियुक्त जमानत प्रस्तुत करने में विफल रहता है, और उसी समय चालान दायर कर दिया जाता है, तो संभवतः यह कहा जा सकता है कि अभियुक्त का जमानत का अधिकार समाप्त हो गया। किन्तु जब तक अभियुक्त जमानत हेतु आवेदन दायर करता है और उस आवेदन में यह संकेत देता है कि न्यायालय के समुचित आदेशों के अधीन जमानत प्रस्तुत करने को वह तैयार है, तब तक अभियुक्त का जमानत पर मुक्त किए जाने का अधिकार केवल इस आकस्मिक कारण से निष्फल नहीं किया जा सकता कि दंडाधिकारी उपलब्ध न हो, अथवा वाद प्रस्तुत न किया जा सका हो, अथवा दंडाधिकारी ने त्रुटिवश जमानत आदेश पारित करने से इंकार कर दिया हो और वाद उच्चतर मंच के समक्ष ले जाया गया हो, तथा उस मध्यावधि में चालान दायर कर दिया गया हो</u>। यही एकमात्र तरीका है, जिसके माध्यम से अन्वेषण अभिकरण द्वारा निर्धारित अवधि के भीतर चालान दायर न किए जाने के कारण अभियुक्त को प्राप्त तथाकथित अविच्छेद्य अधिकार और समाज के व्यापक हित, जिसमें विधिसम्मत रूप से अभियुक्त को केवल अभियोजन की निष्क्रियता के कारण जमानत पर मुक्त होने से रोका जाना सम्मिलित है—इन दोनों के बीच संतुलन स्थापित किया जा सकता है।"

(जोर दिया गया)

ऐसा प्रतिपादित करते हुए, इस न्यायालय ने अभियुक्त के डिफ़ॉल्ट जमानत के अधिकार से संबंधित निर्णयों की एक श्रृंखला पर विस्तृत रूप से विचार किया और उनका गहन परीक्षण किया, जिनमें ***संजय दत्त बनाम राज्य (केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के माध्यम***

से), (1994) 5 एस.सी.सी. 410; ***हितेंद्र विष्णु ठाकुर बनाम महाराष्ट्र राज्य,*** (1994) 4 एस.सी.सी. 602; ***केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के माध्यम से राज्य बनाम मोहम्मद अशरफ़ भट्ट,*** (1996) 1 एस.सी.सी. 432; ***डॉ. बिपिन शांतिलाल पंचाल बनाम गुजरात राज्य,*** (1996) 1 एस.सी.सी. 718; तथा ***मोहम्मद इक़बाल मदर शेख बनाम महाराष्ट्र राज्य***, (1996) 1 एस.सी.सी. 722 — को सम्मिलित रूप से विचार में लिया गया।

10.1 वर्तमान प्रयोजन के लिए, हमें उक्त निर्णय में न्यायालय द्वारा निकाले गए निम्नलिखित निष्कर्षों को उद्धृत करना भी प्रासंगिक प्रतीत होता है—

"13.3 उक्त 90 दिनों अथवा 60 दिनों की अवधि की समाप्ति पर, यथास्थिति, अन्वेषण अभिकरण द्वारा निर्धारित अवधि के भीतर अन्वेषण पूर्ण न किए जाने की चूक के कारण, अभियुक्त के पक्ष में जमानत पर मुक्त किए जाने का एक अविच्छेद्य अधिकार उत्पन्न हो जाता है, और यदि अभियुक्त दंडाधिकारी द्वारा निर्देशित अनुसार जमानत देने के लिए तैयार हो तथा जमानत प्रस्तुत करता है, तो वह जमानत पर मुक्त किए जाने का अधिकारी होता है।

13.4 जब अभियुक्त द्वारा अपने पक्ष में उत्पन्न हुए अविच्छेद्य अधिकार के प्रवर्तन हेतु जमानत का आवेदन इस आधार पर दायर किया जाता है कि अन्वेषण अभिकरण ने निर्धारित अवधि के भीतर अन्वेषण पूर्ण नहीं किया है, तो दंडाधिकारी/न्यायालय को, इस बात से संतुष्ट होने पर कि वास्तव में अभियुक्त निर्दिष्ट 90 दिनों अथवा 60 दिनों की अवधि तक अभिरक्षा में रहा है और अन्वेषण अभिकरण द्वारा कोई आरोप-पत्र दायर नहीं किया गया है, उस आवेदन का तत्काल निस्तारण करना होगा। दंडाधिकारी/न्यायालय की ओर से की गई ऐसी तत्पर कार्रवाई अभियोजन को इस बात में सक्षम नहीं होने देगी कि वह अधिनियम के उद्देश्य तथा अन्वेषण अभिकरण की चूक के कारण अभियुक्त को जमानत पर मुक्त किए जाने संबंधी विधायी आदेश को निष्फल कर सके।"

"13.5 यदि अभियुक्त दंडाधिकारी द्वारा निर्देशित अनुसार जमानत प्रस्तुत करने में असमर्थ रहता है, तो धारा 167 के उपखंड (2) के परंतुक तथा स्पष्टीकरण–I के संयुक्त पठन से यह स्पष्ट होता है कि खंड (क) में निर्दिष्ट अवधि की समाप्ति के पश्चात भी अभियुक्त की निरंतर अभिरक्षा अनधिकृत नहीं होगी; और इसलिए, यदि उस अवधि के दौरान अन्वेषण पूर्ण कर लिया जाता है तथा आरोप-पत्र दायर कर दिया जाता है, तो अभियुक्त का तथाकथित अविच्छेद्य अधिकार समाप्त माना जाएगा।

13.6 संजय दत्त वाद में इस न्यायालय द्वारा प्रयुक्त पदबंध "यदि पहले ही उपभोग न किया गया हो" का आशय यह समझा जाना चाहिए कि जब अभियुक्त जमानत हेतु आवेदन दायर करता है और निर्देश दिए जाने पर जमानत प्रस्तुत करने के लिए तैयार रहता है। अन्य शब्दों में, धारा 167 के उपखंड (2) के परंतुक के खंड (क) में निर्दिष्ट अवधि की समाप्ति पर, यदि अभियुक्त जमानत हेतु आवेदन दायर करता है और निर्देश दिए जाने पर जमानत प्रस्तुत करने की तत्परता भी व्यक्त करता है, तो यह माना जाना होगा कि अभियुक्त ने अपने अविच्छेद्य अधिकार का उपभोग कर लिया है, भले ही न्यायालय ने उस आवेदन पर अभी विचार न किया हो, जमानत की शर्तों एवं प्रतिबंधों का संकेत न दिया हो, और अभियुक्त ने अभी तक जमानत प्रस्तुत न की हो।"

(जोर दिया गया)

10.2 ***उदय मोहनलाल आचार्य*** के मामले में, अभियुक्त द्वारा दायर डिफ़ॉल्ट जमानत का आवेदन दंडाधिकारी द्वारा इस गलत धारणा के आधार पर अस्वीकार कर दिया गया था कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2), महाराष्ट्र हितधारक संरक्षण (वित्तीय प्रतिष्ठानों में) अधिनियम, 1999 से संबंधित मामलों पर लागू नहीं होती है। आरोप-पत्र उस समय दायर किया गया था जब जमानत अस्वीकार किए जाने को चुनौती देने वाला आवेदन उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित था। अतः उच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि डिफ़ॉल्ट जमानत का अधिकार अब प्रवर्तनीय नहीं रहा।

उपर्युक्त सिद्धांतों के आधार पर, बहुमत मत ने यह प्रतिपादित किया कि अभियुक्त को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अंतर्गत डिफ़ॉल्ट जमानत के अपने अधिकार का उपभोग किया हुआ माना जाएगा, जैसे ही वह जमानत हेतु आवेदन दायर करता है और जमानत की शर्तों एवं प्रतिबंधों का पालन करने की तत्परता व्यक्त करता है। अभियोजन, जमानत आवेदन के दंडाधिकारी अथवा उच्चतर मंच के समक्ष विचाराधीन या अंतिम निस्तारणाधीन रहते हुए, बाद में आरोप-पत्र या अतिरिक्त शिकायत दायर करके, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के उद्देश्य को निष्फल नहीं कर सकता। तदनुसार, इस न्यायालय ने उस मामले में अपीलकर्ता–अभियुक्त को राहत प्रदान की।

तथापि, ऐसा प्रतीत होता है कि ***उदय मोहनलाल आचार्य*** (उपर्युक्त) में बहुमत द्वारा प्रतिपादित निष्कर्षों के बावजूद, यह भ्रम बना हुआ है कि किस विशिष्ट परिस्थितियों में डिफ़ॉल्ट जमानत प्रदान की जानी चाहिए, विशेष रूप से निर्णय के अनुच्छेद 13.5 और 13.6 के संदर्भ

में। अतः, सभी संदेहों के निवारण के उद्देश्य से, हम यह आवश्यक समझते हैं कि उन परिस्थितियों को स्पष्ट किया जाए, जिनमें अभियुक्त द्वारा इस अधिकार का दावा किया जा सकता है।

II. धारा 167(2) तथा जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता का मौलिक अधिकार

11. इससे पूर्व कि हम धारा 167(2) के अंतर्गत डिफ़ॉल्ट जमानत के अधिकार के उन मानकों का विस्तार से विवेचन करें, जैसा कि इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों द्वारा उनकी व्याख्या की गई है, हम यह उपयुक्त समझते हैं कि ***उदय मोहनलाल आचार्य*** में इस न्यायालय द्वारा व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार तथा उससे वंचित किए जाने के प्रभाव के संबंध में की गई निम्नलिखित टिप्पणियों का उल्लेख किया जाए, जो इस प्रकार हैं—

> "13... व्यक्तिगत स्वतंत्रता भारतीय संविधान के अत्यंत महत्वपूर्ण उद्देश्यों में से एक है और उससे वंचित किया जाना केवल विधि के अनुसार तथा उसके उपबंधों के अनुरूप, जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 21 में विनिर्दिष्ट है, ही किया जा सकता है। जब विधि यह उपबंध करती है कि दंडाधिकारी अभियुक्त को धारा 167 के उपखंड (2) के परंतुक में निर्दिष्ट अधिकतम अवधि तक अभिरक्षा में निरुद्ध रखने का प्राधिकार दे सकता है, तो अन्वेषण अभिकरण द्वारा चालान दायर किए बिना उस अवधि से परे की गई कोई भी निरुद्धता एक बहाना (उपायगत उपक्रम) होगी और वह विधि के अनुसार तथा दंड प्रक्रिया संहिता के उपबंधों के अनुरूप नहीं होगी; और इस प्रकार वह संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघनकारी हो सकती है।"

11.1 भारत के संविधान का अनुच्छेद 21 यह उपबंध करता है कि "*किसी व्यक्ति को उसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अतिरिक्त वंचित नहीं किया जाएगा।*" इस न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा ***मनेका गांधी बनाम भारत संघ, (1978)*** 1 एस.सी.सी. 248 में यह स्थापित किया जा चुका है कि ऐसी प्रक्रिया मनमानी, अन्यायपूर्ण अथवा अविवेकपूर्ण नहीं हो सकती। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधिनियमन का इतिहास तथा उसमें निहित 'डिफ़ॉल्ट जमानत' का संरक्षण, अनुच्छेद 21 से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है और यह वस्तुतः उस संवैधानिक संरक्षण की विधायी अभिव्यक्ति है कि किसी व्यक्ति को विधि के शासन के अनुरूप ही अभिरक्षा में रखा जा सकता है।

11.2 दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 (जिसे आगे '1898 की संहिता' कहा गया है) की धारा 167 के अंतर्गत, जो वर्तमान दंड प्रक्रिया संहिता के अधिनियमन से पूर्व प्रभावी थी, अभियुक्त को पुलिस अथवा न्यायिक अभिरक्षा में भेजे जाने की अधिकतम अवधि पंद्रह दिन थी। तथापि, चूँकि अनेक बार जटिल अन्वेषणों को पंद्रह दिनों के भीतर पूर्ण करना व्यावहारिक रूप से संभव नहीं होता था, इसलिए एक प्रथा विकसित हो गई, जिसके अंतर्गत अन्वेषण अधिकारी, रिमांड अवधि की समाप्ति के पश्चात, 'प्रारंभिक आरोप-पत्र' दायर कर देते थे। तत्पश्चात, राज्य द्वारा दंडाधिकारी से यह अनुरोध किया जाता था कि वह विचारण के आरंभ को स्थगित करे तथा 1898 की संहिता की धारा 344 के अंतर्गत, अन्वेषण पूर्ण होने और अंतिम आरोप-पत्र दायर किए जाने तक अभियुक्त की अतिरिक्त रिमांड को प्राधिकृत करे। भारत के विधि आयोग ने ***न्यायिक प्रशासन में सुधार*** विषयक रिपोर्ट संख्या 14 (खंड-द्वितीय, वर्ष 1948, पृष्ठ 758–760) में यह इंगित किया था कि अनेक मामलों में अभियुक्त कई-कई महीनों तक अभिरक्षा में पड़े रहते थे, जबकि न्यायालयों के समक्ष कोई अंतिम प्रतिवेदन दायर नहीं किया जाता था। यह भी इंगित किया गया कि इस प्रश्न पर न्यायिक मतभेद विद्यमान था कि क्या पुलिस प्रतिवेदन पंद्रह दिनों के भीतर दायर न किए जाने की स्थिति में दंडाधिकारी अभियुक्त को मुक्त करने के लिए बाध्य था या नहीं।

अतः भारत के विधि आयोग ने रिपोर्ट संख्या 14 में यह अनुशंसा की कि पंद्रह दिनों की अवधि की समाप्ति के पश्चात निरंतर रिमांड के लिए एक उपयुक्त उपबंध किए जाने की आवश्यकता है, इस प्रकार कि वह *"गंभीर अपराधों के मामलों में पूर्ण एवं समुचित अन्वेषण की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए भी, व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सुरक्षा सुनिश्चित करे।"* आगे यह भी अनुशंसा की गई कि विधायिका को एक अधिकतम समय-सीमा निर्धारित करनी चाहिए, जिसके परे पुलिस प्रतिवेदन को दंडाधिकारी के समक्ष दायर किए बिना किसी भी अभियुक्त को अभिरक्षा में निरुद्ध नहीं रखा जा सके। यह भी इंगित किया गया कि इंग्लैंड में, यहाँ तक कि देशद्रोह जैसे गंभीर अपराधों के अभियुक्त को भी, विचारण के प्रारंभ तक, अनिश्चित काल तक कारावास में निरुद्ध नहीं रखा जा सकता।

11.3 रिपोर्ट संख्या 14 में की गई उक्त अनुशंसा को भारत के ***विधि आयोग ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1898*** विषयक रिपोर्ट संख्या 41 (खंड–प्रथम, वर्ष 1969, पृष्ठ 76–77) में

पुनः दोहराया। विधि आयोग ने 1898 की संहिता की धारा 344 के दुरुपयोग के विरुद्ध सावधानी बरतने की आवश्यकता पर पुनः बल दिया, जो कि धारा 167 के अंतर्गत निर्धारित वैधानिक अवधि से परे अभियुक्त को रिमांड पर रखने के लिए 'प्रारंभिक प्रतिवेदन' दायर करके किया जा सकता था। यह इंगित किया गया कि इससे गंभीर दुरुपयोग की स्थिति उत्पन्न हो सकती है, जिसमें *"गिरफ्तार व्यक्ति को इस प्रकार अनिश्चित काल तक अभिरक्षा में रखा जा सकता है, जबकि अन्वेषण शिथिल गति से चलता रहे।"* अतः आयोग ने रिमांड के लिए 60 दिनों की अधिकतम समय-सीमा निर्धारित किए जाने की अनुशंसा की। आयोग ने रिपोर्ट संख्या 37 में पूर्व में व्यक्त की गई उस आशंका पर भी विचार किया कि इस प्रकार का विस्तार 60 दिनों की अवधि को एक नियमित औपचारिकता बना सकता है। तथापि, यह विश्वास व्यक्त किया गया कि उच्चतर न्यायालयों द्वारा समुचित पर्यवेक्षण किए जाने से इस प्रकार की स्थिति से बचा जा सकेगा।

11.4 रिपोर्ट संख्या 41 में की गई अनुशंसाओं को केंद्र सरकार द्वारा वर्ष 1970 में दंड प्रक्रिया संहिता विधेयक का प्रारूप तैयार करते समय संज्ञान में लिया गया तथा उन्हें सम्मिलित किया गया। अंततः, 1898 की संहिता को प्रतिस्थापित कर वर्तमान दंड प्रक्रिया संहिता अधिनियमित की गई। दंड प्रक्रिया संहिता के उद्देश्यों और कारणों के विवरण में यह उपबंधित है कि विधि आयोग की अनुशंसाओं का मूल्यांकन करते समय सरकार ने, अन्य बातों के साथ-साथ, निम्नलिखित महत्वपूर्ण विचारों को ध्यान में रखा —

> "3. आयोग की अनुशंसाओं की सरकार द्वारा सावधानीपूर्वक जाँच की गई, और अन्य बातों के अतिरिक्त, निम्नलिखित मूलभूत विचारों को दृष्टिगत रखा गया—
>
> (i) किसी अभियुक्त को प्राकृतिक न्याय के स्वीकृत सिद्धांतों के अनुरूप निष्पक्ष विचारण प्राप्त होना चाहिए;
>
> (ii) अन्वेषण एवं विचारण में विलंब से बचने के लिए हर संभव प्रयास किया जाना चाहिए, क्योंकि ऐसा विलंब न केवल संबंधित व्यक्तियों के लिए, बल्कि समाज के लिए भी हानिकारक होता है; तथा
>
> (iii) प्रक्रिया जटिल नहीं होनी चाहिए और जहाँ तक संभव हो, समाज के निर्धन वर्गों को निष्पक्ष व्यवहार सुनिश्चित किया जाना चाहिए।"

11.5 इसी पृष्ठभूमि में वर्तमान दंड प्रक्रिया संहिता में धारा 167(2) का अधिनियमन किया गया, जिसके द्वारा अभियुक्त की रिमांड की अवधि के लिए किए गए अपराध की गंभीरता के अनुपात में समय-सीमाएँ निर्धारित की गईं; और ऐसा न होने की स्थिति में अभियुक्त को जमानत का अविच्छेद्य अधिकार प्राप्त हो जाता है। जैसा कि उपरोक्त उल्लिखित विधि आयोग की अनुशंसाओं से स्पष्ट है, विधायिका का आशय यह था कि अन्वेषण पूर्ण करने हेतु पर्याप्त समय-सीमाओं की आवश्यकता और अभियुक्त की नागरिक स्वतंत्रताओं की रक्षा की आवश्यकता—इन दोनों के बीच संतुलन स्थापित किया जाए।धारा 167(2) एक स्पष्ट वैधानिक आदेश प्रदान करती है कि अन्वेषण अभिकरण को निर्धारित समयावधि के भीतर आवश्यक साक्ष्य संकलित करने होंगे, अन्यथा अभियुक्त को आगे अभिरक्षा में नहीं रखा जा सकता। इससे यह सुनिश्चित होता है कि अन्वेषण अधिकारी, अतिरिक्त रिमांड की संभावना का दुरुपयोग किए बिना, त्वरित एवं दक्षतापूर्वक कार्य करने के लिए बाध्य हों। यह भी सुनिश्चित करता है कि अपराध की सूचना दिए जाने की तिथि से, न्यायालय द्वारा वाद का किसी भी अनावश्यक विलंब के बिना संज्ञान लिया जाए, ताकि समाज व्यापक रूप से आपराधिक न्याय प्रणाली पर अपना विश्वास न खोए और उसके प्रति निराशा अथवा निंदकता विकसित न हो।

11.6 अतः, जैसा कि उपर्युक्त उल्लेख किया गया है, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2), संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता को अवैध एवं मनमानी अभिरक्षा के विरुद्ध संरक्षण प्रदान करने वाली संवैधानिक प्रतिबद्धता से अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है, और इसकी व्याख्या उसी उद्देश्य की पूर्ति करने वाले ढंग से की जानी चाहिए। इस संदर्भ में, हमें इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ द्वारा ***राकेश कुमार पॉल बनाम असम राज्य***, (2017) 15 एस.सी.सी. 67 में दिए गए निर्णय का उल्लेख उपयोगी प्रतीत होता है, जिसमें दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) की व्याख्या के संबंध में कुछ मौलिक सिद्धांत प्रतिपादित किए गए थे, यद्यपि उसमें सम्मिलित विधिक प्रश्न वर्तमान मामले से कुछ भिन्न थे। ***राकेश कुमार पॉल*** के मामले में तीन-न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष प्रश्न यह थे कि— प्रथम, क्या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2)(क)(i) के अंतर्गत 90 दिनों की रिमांड-वृद्धि उन अपराधों पर भी लागू होगी, जिनमें अधिकतम कारावास अवधि 10 वर्ष है, यद्यपि न्यूनतम अवधि 10 वर्ष से कम है; तथा द्वितीय, क्या अभियुक्त द्वारा दायर जमानत आवेदन को डिफ़ॉल्ट जमानत हेतु आवेदन के रूप में माना जा सकता है, भले ही दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अंतर्गत वैधानिक अवधि की समाप्ति को जमानत का आधार विशेष रूप से उल्लिखित न किया गया हो। बहुमत

मत ने यह प्रतिपादित किया कि 90 दिनों की सीमा केवल उन्हीं अपराधों के संबंध में उपलब्ध है, जिनमें न्यूनतम दस वर्ष के कारावास का प्रावधान किया गया है; तथा यह भी कि उच्च न्यायालय के समक्ष अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता द्वारा डिफ़ॉल्ट जमानत के लिए प्रस्तुत मौखिक तर्क, लिखित आवेदन के स्थान पर पर्याप्त होंगे। यह इस तर्क पर आधारित था कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता से संबंधित मामलों में न्यायालय को अत्यधिक तकनीकी दृष्टिकोण नहीं अपनाना चाहिए। न्यायमूर्ति श्री मदन बी. लोकुर, ने अपने बहुमत मत में इस संदर्भ में निम्नलिखित महत्वपूर्ण टिप्पणियाँ कीं—

"29. इसके बावजूद, चौबीस घंटों के भीतर तथा अन्यथा समय-सीमाबद्ध अवधि के भीतर अन्वेषण पूर्ण किए जाने का मूल विधायी आशय अपरिवर्तित बना हुआ है, भले ही वह अवधि वर्षों के साथ विस्तारित की गई हो। यह इस बात का संकेत है कि अन्वेषण पूर्ण करने हेतु पर्याप्त समय प्रदान करने के अतिरिक्त, विधायिका ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता को भी सदैव प्राथमिक महत्व दिया है और यह निरंतर माना है कि किसी अभियुक्त को दीर्घकालीन अथवा अनिश्चित अवधि तक अभिरक्षा में रखा जाना अन्यायपूर्ण होगा। इसी कारण से, तथा अन्वेषण अभिकरण को उत्तरदायी ठहराने के उद्देश्य से, विधायिका द्वारा समय-सीमाएँ निर्धारित की गई हैं ...

xxx

"32... ऐसे दृष्टिकोण और मत एक दीर्घ अवधि तक बने रहने के कारण, विधायिका को एक शताब्दी से अधिक समय से इस बात के लिए प्रेरित किया गया है कि अन्वेषण का शीघ्र निष्कर्ष सुनिश्चित किया जाए, ताकि किसी अभियुक्त को उस अपराध के लिए, जिसे संभव है कि उसने किया ही न हो, अनावश्यक रूप से दीर्घकालीन अभिरक्षा में रखकर उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित न किया जाए। हमारे मत में, हमारे समक्ष उपस्थित संपूर्ण वाद-विवाद को भी अन्वेषण के शीघ्र निष्कर्ष के दृष्टिकोण से तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता के कोण से देखा जाना चाहिए, न कि केवल शब्दकोशीय अथवा शाब्दिक दृष्टिकोण से, जैसा कि राज्य की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रतिपादित किया गया है।

xxxx

"41. हम यह दृष्टिकोण इस बात को ध्यान में रखते हुए अपनाते हैं कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा संविधान के अनुच्छेद 21 से संबंधित मामलों में हमेशा औपचारिकतावादी या अत्यधिक तकनीकी दृष्टिकोण अपनाना उपयुक्त नहीं होता। इस न्यायालय तथा अन्य

संवैधानिक न्यायालयों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता संबंधी न्यायशास्त्र की इतिहास-यात्रा में बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट तथा अन्य रिटों के लिए याचिकाएँ, मुख्य न्यायाधीश या न्यायालय को संबोधित एक पत्र के आधार पर भी, स्वीकार की जाती रही हैं।"

(जोर दिया गया)

अतः, न्यायालय किसी भी ऐसे प्रश्न पर विचार करते समय, जो संविधान के अनुच्छेद 21 में निहित अधिकारों को स्पर्श करता हो, कठोर अथवा औपचारिकतावादी दृष्टिकोण नहीं अपना सकते।

11.7 हम इस संदर्भ में इस न्यायालय के हालिया निर्णय ***एस. कासी बनाम राज्य (समयनल्लूर पुलिस थाना, मदुरै ज़िला के निरीक्षक के माध्यम से)*** (आपराधिक अपील संख्या 452/2020, दिनांक 19 जून 2020), 2020 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 529, का भी लाभपूर्वक उल्लेख कर सकते हैं, जिसमें यह अवलोकन किया गया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अंतर्गत डिफ़ॉल्ट जमानत का अविच्छेद्य अधिकार, संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार का अभिन्न अंग है, और वर्तमान में विद्यमान महामारी जैसी स्थिति के दौरान भी उक्त जमानत अधिकार को निलंबित नहीं किया जा सकता। यह भी विशेष रूप से प्रतिपादित किया गया कि अभियुक्त का स्वतंत्र किए जाने का अधिकार, राज्य के अन्वेषण जारी रखने तथा आरोप-पत्र प्रस्तुत करने के अधिकार पर प्रधानता रखता है।

11.8 अतिरिक्त रूप से, यह विधि में सुव्यवस्थित है कि दंडात्मक विधि की व्याख्या में किसी भी प्रकार की अस्पष्टता होने पर, न्यायालयों को उस व्याख्या को वरीयता देनी चाहिए जो अभियुक्त के अधिकारों के संरक्षण की ओर झुकाव रखती हो, क्योंकि व्यक्तिगत अभियुक्त और राज्य तंत्र के बीच सर्वव्यापी शक्ति-असमानता विद्यमान रहती है। यह सिद्धांत केवल विषयवस्तुगत दंडात्मक विधियों के मामलों में ही नहीं, बल्कि उन प्रक्रियाओं के मामलों में भी लागू होता है जो अभियुक्त की स्वतंत्रता के सीमांकन का प्रावधान करती हैं।

दंड प्रक्रिया संहिता के संदर्भ में विशेष रूप से, उद्देश्यों एवं कारणों का विवरण (उपरोक्त) विधि की व्याख्या हेतु एक महत्वपूर्ण सहायक साधन है। धारा 167(2) की व्याख्या करते समय विधायिका द्वारा व्यक्त किए गए तीनहरे उद्देश्यों को ध्यान में रखा जाना आवश्यक है, अर्थात्— (i) निष्पक्ष विचारण सुनिश्चित करना, (ii) शीघ्र अन्वेषण एवं विचारण, तथा (iii) ऐसी युक्तिसंगत प्रक्रिया का निर्धारण करना जो समाज के निर्धन वर्गों के हितों की रक्षा करे। ये

उद्देश्य वस्तुतः अनुच्छेद 21 के अंतर्गत प्रत्याभूत व्यापक मौलिक अधिकार के उपसमुच्चय मात्र हैं।

11.9 अतः वर्तमान वाद में उत्पन्न दुविधा के समाधान के उद्देश्य से, अनुच्छेद 21 के अंतर्गत जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार के संरक्षण के परिप्रेक्ष्य से ही, हम धारा 167(2) से संबंधित विभिन्न न्यायिक व्याख्याओं का स्पष्टीकरण तथा सामंजस्य स्थापित करेंगे।

III. संजय दत्त में प्रयुक्त "यदि पहले से उपभोग न किया गया हो" पदबंध का अर्थ

12. धारा 167(2) के अंतर्गत अधिकार के उत्पन्न होने एवं लोप के प्रश्न से संबंधित प्रासंगिक निर्णयों में से एक, ***हितेन्द्र विष्णु ठाकुर*** (उपरोक्त) में द्वि-न्यायाधीश पीठ का निर्णय है। उक्त वाद में, न्यायालय को आतंकवादी एवं विध्वंसक गतिविधियाँ (निवारण) अधिनियम, 1987 की धारा 20(4)(ख ख) के क्षेत्र-विस्तार की व्याख्या करनी थी, जो कि एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 36ए(4) के प्रावधान के समतुल्य है। न्यायालय ने यह प्रतिपादित किया कि टी.ए.डी.ए. की धारा 20(4) सहपठित दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अंतर्गत जमानत चाहने वाले अभियुक्त को ऐसी डिफ़ॉल्ट जमानत के लिए आवेदन प्रस्तुत करना आवश्यक है, और यदि आरोपपत्र दायर करने की अवधि समाप्त हो चुकी हो, तो लोक अभियोजक को सूचना देने के पश्चात, वाद के गुण-दोष से अप्रभावित रहते हुए, न्यायालय अभियुक्त को जमानत पर रिहा करेगा। यह भी निर्णीत किया गया कि लोक अभियोजक की रिपोर्ट के आधार पर यदि न्यायालय द्वारा समय-वृद्धि प्रदान नहीं की जाती, तो आतंकवादी एवं विध्वंसक गतिविधियाँ (निवारण) अधिनियम. के अंतर्गत नामित न्यायालय को, अभियुक्त द्वारा जमानत का आवेदन किए जाने तथा न्यायालय के निर्देशानुसार जमानत बंधपत्र प्रस्तुत करने के लिए तत्पर होने की स्थिति में, अभियुक्त के डिफ़ॉल्ट जमानत के अपरिहार्य अधिकार को नकारने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं होगा। आगे यह भी कहा गया कि ऐसी परिस्थिति में न्यायालय अग्रिम रिमांड हेतु किसी भी अनुरोध को अस्वीकार करने के लिए बाध्य है। हालाँकि, यह भी स्पष्ट रूप से कहा गया कि यदि अभियुक्त ऐसा कोई आवेदन प्रस्तुत नहीं करता, तो न्यायालय स्वप्रेरणा से अभियुक्त को रिहा नहीं कर सकता।

12.1 तत्पश्चात, धारा 20(4)(ख)(ख) की समुचित व्याख्या का प्रश्न इस न्यायालय की संविधान पीठ के समक्ष ***संजय दत्त*** (उपरोक्त) में संदर्भित किया गया। इस न्यायालय के समक्ष यह आपत्ति व्यक्त की गई कि ***हितेंद्र विष्णु ठाकुर*** (उपरोक्त) में दिया गया निर्णय इस रूप में न

माना जाए कि वह अंतिम प्रतिवेदन अथवा चालान दायर किए जाने के पश्चात भी अभियुक्त को डिफ़ॉल्ट जमानत पर मुक्त किए जाने का अविच्छेद्य अधिकार प्रदान करता है। इस बिंदु का निस्तारण करते हुए, संविधान पीठ ने यह प्रतिपादित किया कि—

"48... ऐसी स्थिति में अभियुक्त के पक्ष में उत्पन्न होने वाला अविच्छेद्य अधिकार, चालान दायर किए जाने से पूर्व ही प्रवर्तनीय होता है और यदि उसे पहले से उपभोग नहीं किया गया हो, तो चालान दायर हो जाने पर वह अधिकार जीवित नहीं रहता अथवा प्रवर्तनीय नहीं रहता। एक बार चालान दायर हो जाने के पश्चात, जमानत प्रदान किए जाने का प्रश्न केवल वाद के गुण-दोष के संदर्भ में तथा चालान दायर किए जाने के पश्चात अभियुक्त को जमानत प्रदान किए जाने से संबंधित उपबंधों के अनुसार ही विचारणीय एवं निर्णीत किया जाना होता है।चालान दायर हो जाने के पश्चात अभियुक्त की अभिरक्षा, धारा 167 द्वारा शासित नहीं होती, बल्कि दंड प्रक्रिया संहिता के भिन्न उपबंधों द्वारा नियंत्रित होती है। यदि वह अधिकार अभियुक्त के पक्ष में उत्पन्न हो चुका था, किंतु चालान दायर किए जाने तक उसका प्रवर्तन नहीं किया गया, तो उसके पश्चात उसके प्रवर्तन का कोई प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि चालान दायर होते ही वह अधिकार समाप्त हो जाता है, चूँकि धारा 167 दंड प्रक्रिया संहिता लागू रहना बंद कर देती है... संविधान पीठ के निर्णयों द्वारा यह स्थापित किया जा चुका है कि वैध रिमांड आदेश के अभाव अथवा अभियुक्त की निरुद्धता के आधार पर बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट हेतु दायर याचिका को, यदि नियम की वापसी की तिथि पर अभियुक्त की अभिरक्षा अथवा निरुद्धता किसी वैध आदेश के आधार पर हो, तो खारिज किया जाना चाहिए।"

xxx

"53... (2)(ख) आतंकवादी और विघटनकारी गतिविधियाँ (निवारण) अधिनियम की धारा 20(4)(ख)(ख) को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के साथ पढ़ने पर, अन्वेषण पूर्ण न किए जाने तथा निर्धारित अवधि के भीतर चालान दायर न किए जाने की स्थिति में अभियुक्त को जमानत पर मुक्त किए जाने का 'अविच्छेद्य अधिकार', जैसा कि *हितेंद्र विष्णु ठाकुर* में प्रतिपादित किया गया है, वह ऐसा अधिकार है जो चूक की तिथि से लेकर चालान दायर किए जाने तक अभियुक्त के पक्ष में उत्पन्न होता है और उसी अवधि के भीतर ही अभियुक्त द्वारा प्रवर्तनीय होता है; तथा चालान दायर हो जाने पर वह अधिकार जीवित नहीं रहता अथवा प्रवर्तनीय नहीं रहता। यदि अभियुक्त 180 दिनों की

अवधि की समाप्ति पर, अथवा यथास्थिति विस्तारित अवधि की समाप्ति पर, इस उपबंध के अंतर्गत जमानत हेतु आवेदन करता है, तो उसे तत्काल जमानत पर मुक्त किया जाना होगा। इस प्रकार जमानत पर मुक्त किया गया अभियुक्त, दंड प्रक्रिया संहिता के उपबंधों के अनुसार पुनः गिरफ्तार किया जा सकता है और अभिरक्षा में भेजा जा सकता है। चालान दायर किए जाने के पश्चात, यद्यपि निर्धारित अवधि के भीतर चालान दायर करने में चूक हुई हो, अभियुक्त को जमानत पर मुक्त किए जाने का अधिकार, चालान दायर किए जाने की तिथि से, केवल उसी अवस्था में लागू जमानत-प्रावधानों द्वारा शासित होगा।"

(जोर दिया गया)

उपर्युक्त उल्लिखित पदबंध *"यदि पहले से उपभोग न किया गया हो"* को लेकर यह प्रतीत होता है कि वह विवाद का विषय बन गया है, क्योंकि न्यायालयों के बीच इस प्रश्न पर मतभेद रहे हैं कि क्या डिफ़ॉल्ट जमानत का अधिकार—जमानत हेतु आवेदन दायर किए जाते ही उपभोग एवं प्रवर्तित हो जाता है; अथवा जब जमानत याचिका का न्यायालय द्वारा अंतिम रूप से निस्तारण कर दिया जाता है; अथवा केवल तब, जब अभियुक्त न्यायालय द्वारा निर्देशित अनुसार वास्तव में जमानत प्रस्तुत करता है और अभिरक्षा से मुक्त किया जाता है।

12.2 ***उदय मोहनलाल आचार्य*** (उपर्युक्त) में बहुमत मत ने इस अस्पष्टता को यह प्रतिपादित करते हुए स्पष्ट किया कि ***संजय दत्त*** (उपर्युक्त) में इस न्यायालय द्वारा प्रयुक्त पदबंध *"यदि पहले से उपभोग न किया गया हो"* का आशय यह समझा जाना चाहिए कि *"जब अभियुक्त जमानत हेतु आवेदन दायर करता है और निर्देश दिए जाने पर जमानत प्रस्तुत करने के लिए तैयार रहता है"*। ऐसी स्थिति में यह माना जाना होगा कि अभियुक्त ने अपने अविच्छेद्य अधिकार का प्रवर्तन कर लिया है, भले ही न्यायालय ने उस आवेदन पर अभी विचार न किया हो, जमानत की शर्तों एवं प्रतिबंधों का संकेत न दिया हो, और अभियुक्त ने अभी तक जमानत प्रस्तुत न की हो।

12.3 तथापि, न्यायमूर्ति श्री बी.एन. अग्रवाल ने अपने अल्पमत मत में बहुमत मत से आंशिक रूप से असहमति व्यक्त की, विशेष रूप से ***उदय मोहनलाल आचार्य*** (उपर्युक्त) के अनुच्छेद 13.6 में व्यक्त निष्कर्षों के संबंध में। उनका मत था कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2)(क)(ii) में प्रयुक्त पदबंध "*अभियुक्त को जमानत पर मुक्त किया जाएगा यदि वह जमानत देने के लिए तैयार हो और <u>जमानत प्रस्तुत करता है</u>*" (जोर दिया गया) तथा धारा 167(2) के

स्पष्टीकरण–I में प्रयुक्त पदबंध *"जब तक अभियुक्त जमानत प्रस्तुत नहीं करता, तब तक उसे अभिरक्षा में निरुद्ध रखा जाएगा"* यह संकेत करते हैं कि डिफ़ॉल्ट जमानत पर मुक्त किए जाने का अधिकार केवल वास्तविक रूप से जमानत प्रस्तुत किए जाने पर ही प्रयोग किया जा सकता है। उन्होंने आगे यह भी अभिमत व्यक्त किया कि ***संजय दत्त*** (उपर्युक्त) में संविधान पीठ के निर्णय की यह व्याख्या की जानी चाहिए कि यदि किसी जमानत पर मुक्त किए जाने का निर्देश देने वाला कोई आदेश पारित किए जाने से पूर्व, तथा जमानत बंधपत्र प्रस्तुत किए जाने से पूर्व, चालान दायर कर दिया जाता है, तो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अंतर्गत प्राप्त अधिकार अभियुक्त के लिए उपलब्ध नहीं रहता।

12.4 दोनों मतों पर विचार करने के उपरांत, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि ***उदय मोहनलाल आचार्य*** (उपर्युक्त) में व्यक्त बहुमत मत, ***संजय दत्त*** (उपर्युक्त) में संविधान पीठ द्वारा दिए गए निर्णय की सही व्याख्या है। संजय दत्त का निर्णय मात्र यह स्पष्ट करता है कि अन्वेषण की निर्धारित अवधि समाप्त होते ही अभियुक्त पर डिफ़ॉल्ट जमानत हेतु त्वरित रूप से आवेदन करने का एक सकारात्मक सहवर्ती दायित्व आरोपित होता है। जैसा कि ***हितेंद्र विष्णु ठाकुर*** (उपर्युक्त) के निर्णय में स्पष्ट रूप से चेतावनी दी गई है, न्यायालय यह देखे बिना कि अभियुक्त जमानत प्रस्तुत करने के लिए तैयार है या नहीं, स्वप्रेरणा से जमानत प्रदान नहीं कर सकता। यह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के भीतर एक अंतर्निहित सुरक्षा है, जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि अभियुक्त को न्यायालय की संतुष्टि प्राप्त किए बिना, कि वह आगे के अन्वेषण अथवा विचारण के लिए, यथास्थिति, अपनी उपस्थिति सुनिश्चित करने में सक्षम है, स्वतः अभिरक्षा से मुक्त न कर दिया जाए।इसके अतिरिक्त, जैसा कि ***राकेश कुमार पॉल*** (उपर्युक्त) में व्यक्त बहुमत मत ने इंगित किया है, कभी-कभी दुर्लभ परिस्थितियाँ ऐसी हो सकती हैं, जहाँ अभियुक्त रिमांड से बाहर अपनी व्यक्तिगत सुरक्षा को खतरे के कारण अथवा अन्य कारणों से, स्वेच्छा से अपने जमानत के अधिकार का परित्याग कर देता है। ***संजय दत्त*** का निर्णय यह स्पष्ट करता है कि एक बार आरोप-पत्र दायर हो जाने पर, अभियुक्त द्वारा अधिकार का ऐसा परित्याग अंतिम हो जाता है, और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) लागू रहना समाप्त कर देती है।

तथापि, ***संजय दत्त*** में संविधान पीठ के निर्णय की ऐसी व्याख्या नहीं की जा सकती कि जहाँ अभियुक्त ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अंतर्गत अपने अधिकार का तत्परता से प्रयोग किया हो और जमानत प्रस्तुत करने की अपनी तत्परता भी प्रदर्शित की हो, वहाँ उसे उसके आवेदन के निस्तारण में हुई देरी अथवा उसके त्रुटिपूर्ण अस्वीकरण के कारण जमानत से

वंचित किया जा सके। न ही अभियुक्त को अभियोजन द्वारा जमानत आवेदन दायर किए जाने वाले उसी दिन पुलिस प्रतिवेदन अथवा अतिरिक्त शिकायत दायर करने की कपटपूर्ण युक्ति के कारण अभिरक्षा में निरुद्ध रखा जा सकता है।

12.5 राज्य की ओर से यह तर्क कि "उपभोग किया गया" पदबंध का अर्थ केवल आवश्यक जमानत प्रस्तुत किए जाने के पश्चात वास्तविक रूप से मुक्त किया जाना होगा, अभियुक्त के साथ गंभीर अन्याय करेगा और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के परंतुक के मूल उद्देश्य को ही विफल कर देगा। यदि श्री लेखी के तर्कों को स्वीकार कर लिया जाए, तो अनेक ऐसे मामले उत्पन्न होंगे जहाँ लोक अभियोजक, मध्यावधि के दौरान राज्य को न्यायालय के समक्ष अतिरिक्त शिकायत अथवा अन्वेषण प्रतिवेदन दायर करने में सुविधा प्रदान करने के उद्देश्य से, जमानत आवेदन की सुनवाई को लंबा खींच सकता है। कुछ मामलों में, न्यायालय भी किसी न किसी कारण से प्रक्रिया में विलंब कर सकता है।ऐसी स्थिति में, अभियुक्त के पक्ष में जमानत आदेश प्राप्त करने का अविच्छेद्य अधिकार निष्फल हो जाएगा। यह विधायिका का आशय नहीं हो सकता था। यदि ऐसी प्रथा को अनुमति दी जाती है, तो वह अवैध अभिरक्षा को वैध मान लेने के समान होगी। निर्धारित अवधि की समाप्ति के पश्चात, न्यायालय के पास अभियुक्त को पुनः अभिरक्षा में भेजने का कोई क्षेत्राधिकार शेष नहीं रहता। अभियोजन को निर्धारित अवधि के भीतर अपीलकर्ता के विरुद्ध अन्वेषण प्रतिवेदन अथवा शिकायत दायर न करने की अपनी ही चूक का लाभ उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

12.6 ***उदय मोहनलाल आचार्य*** (उपर्युक्त) में न्यायमूर्ति श्री बी.एन. अग्रवाल ने अपने अल्पमत मत में यह उल्लेख किया कि उन मामलों के बीच भेद किया जा सकता है, जहाँ न्यायालय ने अभियुक्त के अधिकार को विफल करने के उद्देश्य से विलंबकारी युक्तियाँ अपनाई हों, और उन मामलों के बीच, जहाँ जमानत आवेदन के निर्णय में हुआ विलंब सद्भावपूर्ण एवं अनजाने में हुआ हो।पूर्ववर्ती स्थिति में, अभियुक्त उचित निर्देश प्राप्त करने हेतु उच्चतर न्यायालय का रुख कर सकता है। जबकि उत्तरवर्ती स्थिति में, यदि अभियोजन इस बीच चालान दायर कर देता है, तो न्यायालय को जमानत याचिका को खारिज कर देना चाहिए।इसी प्रकार, वर्तमान मामले में उत्तरदाता/शिकायतकर्ता ने भी दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) से संबंधित ***उदय मोहनलाल आचार्य*** तथा इस न्यायालय के पश्चवर्ती निर्णयों को इस आधार पर भिन्न सिद्ध करने का प्रयास किया है कि विचारण न्यायालय ने जमानत आवेदन को उसी दिन विचाराधीन लिया,

जिस दिन वह दायर किया गया था, और अतः कोई ऐसा अन्यायपूर्ण विलंब नहीं हुआ, जिससे अभियुक्त जमानत पर मुक्त किए जाने का अधिकारी बन सके।

हमारे सुविचारित मत में, ऐसा कोई भेद स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि इससे समानांतर वाद-विवाद उत्पन्न होंगे, जिनमें जमानत आवेदन में विलंब करने अथवा किसी विशिष्ट तिथि एवं समय पर उसे सुनवाई हेतु सूचीबद्ध करने के संबंध में न्यायालय की मंशा की पृथक-पृथक जाँच आवश्यक हो जाएगी। जमानत आवेदन के निस्तारण में विलंब अनेक कारणों से हो सकता है और सभी परिस्थितियों में उसका कोई स्पष्ट एवं एकरूप उत्तर उपलब्ध नहीं हो सकता। अतः, जमानत आवेदन के निस्तारण में विलंब के कारणों से निरपेक्ष, यह माना जाएगा कि अभियुक्त ने जमानत आवेदन दायर करते ही अपने अविच्छेद्य अधिकार का प्रयोग कर लिया है, यद्यपि अभिरक्षा से उसका वास्तविक मुक्त होना, जमानत प्रदान करने वाले आदेश के अनुपालन पर अनिवार्यतः निर्भर रहेगा।

12.7 हम ***राकेश कुमार पॉल*** (उपर्युक्त) में व्यक्त मत से सहमत हैं कि सावधानीपूर्ण उपाय के रूप में, अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता तथा दंडाधिकारी, दोनों को, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अंतर्गत अविच्छेद्य अधिकार अभियुक्त के पक्ष में उत्पन्न होते ही, बिना किसी विलंब के, अभियुक्त को उसकी उपलब्धता के संबंध में सूचित करना चाहिए। यह विशेष रूप से उन परिस्थितियों में आवश्यक है, जहाँ अभियुक्त समाज के वंचित वर्ग से संबंधित हो और अपने विधिक अधिकारों के संबंध में जानकारी तक पहुँच रखने की संभावना कम हो। दंडाधिकारियों द्वारा किया गया ऐसा ज्ञान-साझाकरण, अभियोजन द्वारा अपनाई जाने वाली किसी भी विलंबकारी युक्ति को विफल करेगा और साथ ही संविधान के अनुच्छेद 21 तथा दंड प्रक्रिया संहिता के उद्देश्यों और कारणों के विवरण में निहित दायित्वों के पालन को सुनिश्चित करेगा।

IV. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के स्पष्टीकरण – I का आशय

13. यह सत्य है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के स्पष्टीकरण–I में यह उपबंध किया गया है कि जब तक अभियुक्त जमानत प्रस्तुत नहीं करता, तब तक उसे अभिरक्षा में निरुद्ध रखा जाएगा। तथापि, जैसा कि उपर्युक्त उल्लेख किया गया है, ***उदय मोहनलाल आचार्य*** में व्यक्त बहुमत मत ने स्पष्ट रूप से यह प्रतिपादित किया कि धारा 167(2) का स्पष्टीकरण–I केवल उन्हीं परिस्थितियों पर लागू होता है, जहाँ अभियुक्त ने डिफ़ॉल्ट जमानत के अपने अधिकार का उपभोग कर लिया हो और न्यायालय द्वारा निर्देशित अनुसार जमानत प्रस्तुत करने का उपक्रम किया हो, किंतु न्यायालय द्वारा निर्धारित समयावधि के भीतर जमानत आदेश की शर्तों एवं

प्रतिबंधों का पालन करने में विफल रहा हो। हम स्वयं को बहुमत द्वारा व्यक्त दृष्टिकोण से सहमत पाते हैं। ऐसी स्थिति में, यदि अभियोजन बाद में आरोप-पत्र दायर कर देता है, तो यह कहा जा सकता है कि अभियुक्त ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अंतर्गत अपने जमानत के अधिकार का परित्याग कर दिया है। स्पष्टीकरण–। केवल एक सुरक्षात्मक उपबंध है, जिसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि अभियुक्त को जमानत आदेश का अनुपालन किए बिना तत्काल अभिरक्षा से मुक्त न किया जाए।

13.1 तथापि, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) तथा उससे संबंधित स्पष्टीकरण–। में प्रयुक्त पदबंध "अभियुक्त जमानत प्रस्तुत करता है" की यह व्याख्या नहीं की जा सकती कि यदि अभियुक्त तैयार और इच्छुक होने के बावजूद, दंडाधिकारी के समक्ष जमानत आवेदन लंबित होने के कारण, अथवा उसके जमानत आवेदन के अस्वीकरण को चुनौती देने संबंधी कार्यवाही किसी उच्चतर मंच के समक्ष लंबित होने के कारण, जमानत प्रस्तुत नहीं कर सका, तो उसकी निरंतर अभिरक्षा विधिसम्मत हो जाती है।यदि ऐसी व्याख्या स्वीकार कर ली जाए, तो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के परंतुक का अनुप्रयोग केवल उन्हीं मामलों तक संकीर्ण रूप से सीमित हो जाएगा, जहाँ दंडाधिकारी न्यायालय के समक्ष जमानत आवेदन प्रस्तुत होते ही तत्काल उसका निस्तारण करने में सक्षम हो, जो कि विभिन्न न्यायालयों में लंबित वादों की अधिकता अथवा अन्य कारणों से कभी-कभी व्यावहारिक रूप से संभव नहीं होता। इसके अतिरिक्त, जमानत आवेदन का निस्तारण लोक अभियोजक को सूचना दिए जाने के पश्चात ही किया जाना आवश्यक है।परंतुक की ऐसी कठोर व्याख्या अभियुक्त के अधिकारों को निष्फल कर देगी। अतः अभियुक्त के जमानत पर मुक्त किए जाने के अधिकार को केवल इस आधार पर निष्फल नहीं किया जा सकता कि जमानत प्रस्तुत किए जाने से पूर्व तथा जमानत की शर्तों, जैसे बंधपत्र प्रस्तुत करने आदि, की पूर्ति से पूर्व, अभियोजन ने आरोप-पत्र दायर कर दिया हो, बशर्ते कि अभियुक्त न्यायालय द्वारा निर्धारित समय के भीतर जमानत प्रस्तुत कर देता है।

13.2 अतः हम श्री लेखी के इस तर्क को अस्वीकार करते हैं कि अपीलकर्ता–अभियुक्त दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अंतर्गत संरक्षण का अधिकारी नहीं है, यदि अतिरिक्त शिकायत दायर किए जाने के समय उसने जमानत प्रस्तुत नहीं की थी।

<u>V. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) को स्वापक औषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 36-ए(4) के साथ पढ़ते हुए लोक अभियोजक के अधिकार</u>

14. ***हितेंद्र विष्णु ठाकुर*** (उपर्युक्त) में व्यक्त उस मत के कारण भी कुछ विवाद प्रतीत होता है, जिसमें यह कहा गया है कि लोक अभियोजक, अन्वेषण की अवधि बढ़ाने हेतु प्रतिवेदन दायर करके, डिफ़ॉल्ट जमानत प्रदान किए जाने का विरोध कर सकता है। न्यायालय ने यह कहा कि—

> "30... तथापि, लोक अभियोजक को यह अनुमति है कि वह खंड (ख)(ख) के अंतर्गत समय-वृद्धि की प्रार्थना करते हुए, इस उद्देश्य से न्यायालय के समक्ष *प्रतिवेदन* प्रस्तुत कर, जमानत दिए जाने का विरोध करे। किन्तु, खंड (ख)(ख) के अंतर्गत समय-वृद्धि प्रदान किए जाने की प्रार्थना के संबंध में अभियुक्त को अपना पक्ष रखने का अवसर दिए बिना, न्यायालय द्वारा कोई भी समय-वृद्धि प्रदान नहीं की जाएगी। इस दृष्टिकोण से, यह अप्रासंगिक है कि धारा 20(4) के अंतर्गत 'डिफ़ॉल्ट' के आधार पर जमानत का आवेदन पहले प्रस्तुत किया गया है अथवा खंड (ख)(ख) के अंतर्गत लोक अभियोजक द्वारा परिकल्पित प्रतिवेदन पहले प्रस्तुत किया गया है, जब तक कि जमानत प्रदान करने या अस्वीकार करने के समय दोनों पर विचार किया जाए। यदि धारा 20(4) के खंड (ख) में निर्धारित अवधि समाप्त हो चुकी हो और न्यायालय, खंड (ख)(ख) के अंतर्गत लोक अभियोजक द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन के आधार पर समय-वृद्धि प्रदान न करे, तो न्यायालय अभियुक्त को जमानत पर रिहा करेगा, क्योंकि ऐसी स्थिति में अभियुक्त का जमानत पर रिहा होने का अपरिहार्य अधिकार होगा। यहाँ तक कि जहाँ न्यायालय खंड (ख)(ख) के अंतर्गत समय-वृद्धि प्रदान कर देता है, किन्तु विस्तारित अवधि के भीतर आरोपपत्र दाख़िल नहीं किया जाता, वहाँ भी, यदि अभियुक्त जमानत की प्रार्थना करता है और न्यायालय के निर्देशानुसार जमानत प्रस्तुत करने के लिए तत्पर है, तो न्यायालय के पास अभियुक्त को जमानत पर रिहा करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं रहेगा।"
>
> (जोर दिया गया)

उपर्युक्त कथन की ***संजय दत्त*** (उपर्युक्त) में संविधान पीठ द्वारा पुष्टि की गई, जिसमें यह प्रतिपादित किया गया कि डिफ़ॉल्ट जमानत प्रदान किया जाना, यदि समय-वृद्धि की प्रार्थना की गई हो, तो उस प्रार्थना के अस्वीकार किए जाने पर निर्भर करता है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि यह भ्रम उत्पन्न हो गया है कि ***संजय दत्त*** (उपर्युक्त) इस दृष्टिकोण का समर्थन करता है कि अभियोजन, अन्वेषण पूर्ण करने हेतु समय-वृद्धि (जैसा कि संबंधित विशेष अधिनियम के अंतर्गत उपबंधित है) किसी भी समय माँग सकता है, अथवा अभियुक्त को जमानत पर मुक्त किए जाने से पूर्व किसी भी समय अंतिम प्रतिवेदन दायर कर सकता है, इस तथ्य के बावजूद कि डिफ़ॉल्ट के आधार पर जमानत हेतु आवेदन पहले ही दायर किया जा चुका हो।

14.1 हमारे मत में, ***हितेंद्र विष्णु ठाकुर*** (उपर्युक्त) तथा ***संजय दत्त*** (उपर्युक्त) में की गई वे टिप्पणियाँ, जिनका आशय यह है कि डिफ़ॉल्ट जमानत हेतु आवेदन तथा लोक अभियोजक द्वारा समय-वृद्धि हेतु किया गया कोई भी आवेदन एक साथ विचारार्थ लिए जाने चाहिए, केवल उन्हीं

परिस्थितियों में लागू होती हैं, जहाँ लोक अभियोजक, अभियुक्त द्वारा डिफ़ॉल्ट जमानत हेतु आवेदन दायर किए जाने से पूर्व, समय-वृद्धि की माँग करते हुए प्रतिवेदन दायर करता है। ऐसी स्थिति में, अन्वेषण पूर्ण करने की अवधि समाप्त हो जाने के तथ्य के बावजूद, दोनों आवेदनों पर एक साथ विचार किया जाना आवश्यक होगा।तथापि, जहाँ अभियुक्त पहले ही डिफ़ॉल्ट जमानत हेतु आवेदन कर चुका हो, वहाँ अभियोजक, बाद में अंतिम प्रतिवेदन, अतिरिक्त शिकायत अथवा समय-वृद्धि की माँग वाला प्रतिवेदन दायर करके, अभियुक्त के अविच्छेद्य अधिकार के प्रवर्तन को निष्फल नहीं कर सकता।

14.2 यह भी जोड़ा जाना आवश्यक है, और यह विधि द्वारा भली-भाँति स्थापित है, कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के परंतुक के अंतर्गत दायर डिफ़ॉल्ट जमानत आवेदन पर राज्य को नोटिस जारी किए जाने का उद्देश्य मात्र यह होता है कि लोक अभियोजक न्यायालय को यह संतुष्ट कर सके कि अभियोजन ने पहले ही न्यायालय से समय-वृद्धि का आदेश प्राप्त कर लिया है; अथवा निर्धारित अवधि की समाप्ति से पूर्व नामित न्यायालय में चालान दायर कर दिया गया है; अथवा वास्तव में निर्धारित अवधि अभी समाप्त ही नहीं हुई है। तदनुसार, अभियोजन कथित डिफ़ॉल्ट के आधार पर जमानत प्रदान किए जाने से इन्कार करने हेतु न्यायालय के समक्ष आग्रह कर सकता है।इस प्रकार नोटिस जारी किए जाने से, अभियुक्त द्वारा कुछ तथ्यों के जानबूझकर या अनजाने में दमन के माध्यम से डिफ़ॉल्ट जमानत प्राप्त कर लेने की संभावना से बचाव होता है और साथ ही कार्यवाहियों की बहुलता से भी संरक्षण मिलता है।

तथापि, लोक अभियोजकों को यह अनुमति नहीं दी जा सकती कि वे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अंतर्गत दायर जमानत आवेदनों पर न्यायालय द्वारा जारी सीमित नोटिस का दुरुपयोग करें, जैसे कि कार्यवाहियों को अनावश्यक रूप से लंबित खींचते हुए, अथवा अन्वेषण एजेंसी द्वारा अन्वेषण में रह गई त्रुटियों की पूर्ति को सुगम बनाने तथा 'अतिरिक्त समय खरीदने' के उद्देश्य से पश्चवर्ती आवेदन अथवा प्रतिवेदन दायर करके।

<u>VI. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अंतर्गत अधिकार से संबंधित अन्य प्रासंगिक पूर्व निर्णय</u>

15. उपर्युक्त हमारे निष्कर्षों को इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ द्वारा दिए गए निर्णय ***मोहमद इक़बाल मदार शेख बनाम महाराष्ट्र राज्य*** (उपर्युक्त) से और अधिक बल प्राप्त होता है। उस मामले में, यद्यपि टाडा अधिनियम की धारा 20(4)(ख ख) के अंतर्गत निर्धारित वैधानिक अवधि की समाप्ति के पश्चात आरोप-पत्र प्रस्तुत किया गया था, तथापि यह स्वीकार किया गया

कि अपीलकर्ताओं द्वारा जमानत हेतु कोई पूर्व आवेदन दायर नहीं किया गया था। अतः न्यायालय ने ***संजय दत्त*** पर अवलंबन करते हुए यह प्रतिपादित किया कि आरोप-पत्र प्रस्तुत किए जाने और संज्ञान ले लिए जाने के पश्चात जमानत का अधिकार प्रयोग में नहीं लाया जा सकता।

तथापि, उसी समय, तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने यह कहते हुए गंभीर चिंता व्यक्त की कि न्यायालय ऐसे आचरणों में संलग्न नहीं हो सकते, जैसे कि आरोप-पत्र प्रस्तुत किए जाने तक जमानत आवेदनों को लंबित बनाए रखना, ताकि अभियुक्त के पक्ष में उत्पन्न वैधानिक अधिकार को निष्फल किया जा सके। यदि न्यायालय जानबूझकर जमानत आवेदन का निर्णय नहीं करता और अभियोजन को समय प्रदान करते हुए मामले को स्थगित करता है, तो यह विधायी आदेश का उल्लंघन होगा। यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि ***मोहमद इक़बाल मदार शेख*** में तीन-न्यायाधीशों की वही पीठ, ***संजय दत्त*** में गठित संविधान पीठ का भी हिस्सा थी।

15.1 इसी प्रकार, ***डॉ. बिपिन शांतीलाल पंचाल*** (उपर्युक्त) में यह स्वीकार किया गया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अंतर्गत अभियुक्त के पक्ष में अधिकार उत्पन्न होने के समय अभियुक्त ने जमानत हेतु कोई आवेदन दायर नहीं किया था। अभियुक्त द्वारा अपने अधिकार का प्रयोग किए जाने का प्रयास किए जाने से पूर्व ही आरोप-पत्र दायर किया जा चुका था। संयोगवश, ***मोहमद इक़बाल मदार शेख*** (उपर्युक्त) में मत व्यक्त करने वाली वही तीन-न्यायाधीशों की पीठ, जो ***संजय दत्त*** (उपर्युक्त) में गठित मूल संविधान पीठ का भी हिस्सा थी, ने निम्नलिखित रूप में निर्णय दिया—

> "4...किंतु यह एक स्वीकृत स्थिति है कि आरोपपत्र दिनांक 23-5-1994 को दायर किया जा चुका है और वर्तमान में अपीलकर्ता, दंड प्रक्रिया संहिता के अन्य प्रावधानों के अंतर्गत पारित रिमांड आदेशों के आधार पर अभिरक्षा में है। यह प्रश्न कि क्या वह अभियुक्त, <u>जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 की उप-धारा (2) के प्रावधान के अंतर्गत जमानत पर रिहा किए जाने का अधिकारी था, किंतु जब ऐसा अधिकार उत्पन्न हुआ उस समय उसने कोई आवेदन प्रस्तुत नहीं किया, वह उस अधिकार का प्रयोग कार्यवाही के किसी बाद के चरण में कर सकता है या नहीं — इस प्रश्न की परीक्षा इस न्यायालय की एक संविधान पीठ द्वारा *संजय दत्त बनाम राज्य सी.बी.आई. के माध्यम* से के वाद में की जा चुकी है</u>..."
>
> ...अतः, यदि कोई अभियुक्त विधि द्वारा अनुमत अधिकतम अवधि के भीतर अभियोजन द्वारा आरोप-पत्र दायर न किए जाने के कारण जमानत पर मुक्त किए जाने के अपने

अधिकार का प्रयोग करने में विफल रहता है, तो वह यह दावा नहीं कर सकता कि बीच में आरोप-पत्र दायर हो जाने के बावजूद, उसे किसी भी समय उस अधिकार का प्रयोग करने का अविच्छेद्य अधिकार प्राप्त था। किन्तु, दूसरी ओर, यदि वह विधि द्वारा अनुमत अवधि के भीतर अपने अधिकार का प्रयोग करता है और ऐसी परिस्थितियों में जमानत पर मुक्त किया जाता है, तो उसे केवल आरोप-पत्र दायर किए जाने मात्र से पुनः गिरफ्तार नहीं किया जा सकता, जैसा कि *असलम बाबालाल देसाई बनाम महाराष्ट्र राज्य* के मामले में इंगित किया गया है।

(जोर दिया गया)

उपर्युक्त विवेचन स्पष्ट रूप से हमारे मत का, तथा ***उदय मोहनलाल आचार्य*** में व्यक्त बहुमत मत का समर्थन करता है कि ***संजय दत्त*** का निर्णय केवल एक सावधानीपूर्ण सिद्धांत स्थापित करता है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अंतर्गत अधिकार अभियुक्त के पक्ष में उत्पन्न होते ही अभियुक्त को डिफ़ॉल्ट जमानत हेतु आवेदन करना आवश्यक है। यदि वह ऐसा करने में विफल रहता है, तो अभियोजन द्वारा आरोप-पत्र दायर किए जाने के पश्चात, वह कार्यवाही के किसी बाद के चरण में उस अधिकार का दावा नहीं कर सकता। "ज*ब ऐसा अधिकार उत्पन्न हुआ था उस समय आवेदन न करने पर, क्या वह बाद के चरण में उस अधिकार का प्रयोग कर सकता है*"—ये शब्द स्पष्ट रूप से यह इंगित करते हैं कि अभियुक्त को जमानत का अपना अधिकार उसी क्षण उपभोग किया हुआ माना जाएगा, जब वह उसके लिए आवेदन करता है।

15.2 इस न्यायालय के निर्णयों— ***मोहम्मद अशरफ़्ट भाट (उपर्युक्त)***; ***अतीफ़ नासिर मुल्ला बनाम महाराष्ट्र राज्य***, (2005) 7 एस.सी.सी. 29; तथा ***मुस्ताक अहमद मोहम्मद इसाक बनाम महाराष्ट्र राज्य***, (2009) 7 एस.सी.सी. 480 — का संदर्भ लेना उपयोगी है। ***मोहम्मद अशरफ़्ट भाट*** में, न्यायालय ने जमानत हेतु आवेदन को इस आधार पर अस्वीकार किया कि पुलिस प्रतिवेदन पहले ही प्रस्तुत किया जा चुका था। इस संदर्भ में ***संजय दत्त*** (उपर्युक्त) पर भरोसा किया गया। इसी प्रकार, ***अतीफ़ नासिर मुल्ला*** में न्यायालय ने यह प्रतिपादित किया कि चूँकि आतंकवाद निवारण अधिनियम, 2002 की धारा 49(2)(ख) के अंतर्गत समय-वृद्धि का आदेश, जो स्वापक औषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 36-ए(4) के परंतुक के *समकक्ष विषयवस्तु* में है, डिफ़ॉल्ट जमानत हेतु आवेदन से *पूर्व* ही पारित कर दिया गया था, अतः अभियुक्त जमानत का अधिकारी नहीं होगा। ***मुस्ताक अहमद मोहम्मद इसाक*** में भी,

न्यायालय ने महाराष्ट्र संगठित अपराध नियंत्रण अधिनियम, 1999 की धारा 21(2)(ख) के अंतर्गत जमानत आवेदन को इसी प्रकार अस्वीकार किया, क्योंकि आरोप-पत्र उसी दिन दायर किया गया था, जो विशेष न्यायालय द्वारा प्रदान की गई विस्तारित अवधि का अंतिम दिन था, और इस प्रकार वैधानिक समय-सीमा के भीतर था।

15.3 दूसरी ओर, ***सईद मोहम्मद अहमद काज़मी बनाम राज्य (दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र सरकार)***, (2012) 12 एस.सी.सी. 1 में, अभियुक्त ने 17.7.2012 को डिफ़ॉल्ट जमानत हेतु आवेदन दायर किया। मुख्य महानगर दंडाधिकारी ने, उक्त तिथि को आवेदन की सुनवाई करने के बजाय, सुनवाई को 18.7.2012 के लिए पुनः सूचीबद्ध कर दिया।18.7.2012 को, राज्य ने विधि विरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1967 की धारा 43-डी (2)(ख) के अंतर्गत रिमांड की अवधि बढ़ाने हेतु आवेदन दायर किया, जो कि स्वापक औषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 36-ए(4) के परंतुक के समकक्ष विषयवस्तु में है। दंडाधिकारी ने 20.7.2012 को दोनों विषयों को एक साथ लिया और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अंतर्गत दायर आवेदन पर विचार किए बिना, 2.6.2012 से प्रतिप्रभावी रूप से अभिरक्षा की अवधि बढ़ाने के आवेदन को स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात, 31.7.2012 को आरोप-पत्र दायर किया गया।विद्वान अपर महाधिवक्ता द्वारा ***संजय दत्त*** पर अवलंबन करते हुए यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि समय-वृद्धि हेतु आवेदन दायर किए जाने मात्र से वैधानिक जमानत का अधिकार समाप्त हो गया था।

तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने उपर्युक्त तर्क को अस्वीकार किया और यह प्रतिपादित किया कि अभियुक्त का वैधानिक जमानत का अधिकार, जिसका प्रयोग उसने अपने जमानत आवेदन दायर किए जाने के समय कर लिया था, अन्वेषण पूर्ण करने हेतु समय-वृद्धि के लिए पश्चवर्ती आवेदन से प्रभावित नहीं होता। इसके अतिरिक्त, न्यायालय ने उस मामले में दंडाधिकारी द्वारा अपनाई गई विलंबकारी युक्ति की स्पष्ट रूप से निंदा करते हुए निम्नलिखित शब्दों में टिप्पणी की —

> "25. पक्षकारों की ओर से प्रस्तुत तर्कों, विधि के प्रासंगिक उपबंधों तथा उद्धृत निर्णयों पर सावधानीपूर्वक विचार करने के पश्चात, हम विद्वान अपर महाधिवक्ता श्री रावल द्वारा राज्य की ओर से प्रस्तुत दलीलों को स्वीकार करने में असमर्थ हैं। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि 17-7-2012 को, जब सी.आर. सं. 86 वर्ष 2012 में अपर सत्र न्यायाधीश द्वारा आदेश पारित किया गया और अपीलकर्ता की अभिरक्षा को अवैध ठहराया

गया, तब अपीलकर्ता की ओर से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अंतर्गत वैधानिक जमानत प्रदान किए जाने हेतु आवेदन किया गया, जिसे सुनवाई हेतु सूचीबद्ध किया गया था।आवेदन की सुनवाई करने के बजाय, मुख्य महानगर दंडाधिकारी ने उसे अगले दिन के लिए स्थगित कर दिया, जिस दिन लोक अभियोजक ने अभिरक्षा एवं अन्वेषण की अवधि बढ़ाने हेतु आवेदन दायर किया, और 20-7-2012 को 2-6-2012 से प्रतिप्रभावी प्रभाव के साथ अन्वेषण की अवधि तथा अपीलकर्ता की अभिरक्षा को आगे 90 दिनों के लिए बढ़ा दिया। मुख्य महानगर दंडाधिकारी के आदेश की प्रतिप्रभाविता न केवल अस्थिर है, बल्कि वह उस वैधानिक अधिकार को भी निष्फल नहीं कर सकती, जो अपीलकर्ता के पक्ष में 90 दिनों की अवधि समाप्त होने पर, उस तिथि से उत्पन्न हो गया था, जब अपीलकर्ता को अभिरक्षा में लिया गया था। ऐसा अधिकार, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा संजय दत्त तथा विद्वान अपर महाधिवक्ता द्वारा उद्धृत अन्य मामलों में टिप्पणी की गई है, केवल तभी समाप्त (लुप्त) हो सकता है जब मामले में आरोप-पत्र दायर कर दिया गया हो और उससे पूर्व वैधानिक जमानत हेतु कोई आवेदन न किया गया हो। यह भली-भाँति स्थापित है कि यदि कोई अभियुक्त आरोप-पत्र दायर किए जाने से पूर्व वैधानिक जमानत प्रदान किए जाने के अपने अधिकार का प्रयोग नहीं करता, तो ऐसा आरोप-पत्र दायर हो जाने के पश्चात वह उस लाभ का अधिकार खो देता है, और तत्पश्चात केवल नियमित जमानत हेतु ही आवेदन कर सकता है।"

26. तथापि, वर्तमान मामले की परिस्थितियाँ भिन्न हैं, क्योंकि अपीलकर्ता ने उसी दिन वैधानिक जमानत के अपने अधिकार का प्रयोग कर लिया था, जिस दिन उसकी अभिरक्षा को अवैध ठहराया गया था, और ऐसा आवेदन, अभियोजन द्वारा अन्वेषण पूर्ण करने हेतु समय-वृद्धि के लिए दायर आवेदन को विचारार्थ लेकर उस पर आदेश पारित किए जाने के पश्चात तक, मुख्य महानगर दंडाधिकारी द्वारा अनिर्णीत ही छोड़ दिया गया था।

27. हम मुख्य महानगर दंडाधिकारी द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया की सराहना करने में असमर्थ हैं, जिसे उच्च न्यायालय द्वारा भी समर्थन प्रदान किया गया है, और हमारा यह मत है कि अपीलकर्ता ने 17-7-2012 को वैधानिक जमानत प्रदान किए जाने का अधिकार अर्जित कर लिया था, जब अपर सत्र न्यायाधीश द्वारा उसकी अभिरक्षा को अवैध ठहराया गया था, क्योंकि वैधानिक जमानत हेतु उसका आवेदन उस समय लंबित था,

जब अभियोजन द्वारा अन्वेषण जारी रखने हेतु समय-वृद्धि का आवेदन दायर किया गया। हमारे विचार में, वैधानिक जमानत प्रदान किए जाने का अपीलकर्ता का अधिकार, पश्चवर्ती आवेदन से अप्रभावित रहा, और मुख्य महानगर दंडाधिकारी तथा उच्च न्यायालय, दोनों ने इसके विपरीत निष्कर्ष निकालते हुए त्रुटि की। (जोर दिया गया)

15.4 इसी प्रकार, ***भारत संघ बनाम निराला यादव***, (2014) 9 एस.सी.सी. 457 में, अभियुक्त ने 14.3.2007 को डिफ़ॉल्ट जमानत हेतु आवेदन दायर किया। राज्य ने 15.3.2007 को आतंकवाद निवारण अधिनियम की धारा 49(2)(ख) के अंतर्गत समय-वृद्धि हेतु आवेदन दायर किया। तथापि, किसी भी आवेदन पर कोई आदेश पारित नहीं किया गया। इस बीच, 26.3.2007 को आरोप-पत्र दायर कर दिया गया। 3.4.2007 को विशेष न्यायाधीश ने दोनों आवेदनों पर विचार किया और आरोप-पत्र दायर करने की अवधि को प्रतिप्रभावी रूप से बढ़ा दिया। भारत संघ की ओर से यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि ***संजय दत्त*** के निर्णय के अनुसार, आरोप-पत्र दायर किए जाने से पूर्व जमानत पर कोई आदेश पारित न होने के कारण, जमानत का अविच्छेद्य अधिकार पूर्णतः समाप्त हो गया था।

न्यायालय ने यह उल्लेख किया कि अभियोजन द्वारा 90 दिनों की अवधि की समाप्ति से पूर्व समय-वृद्धि हेतु कोई भी आवेदन दायर नहीं किया गया था। आगे यह भी अवलोकन किया गया कि *"यदि समय-वृद्धि हेतु कोई आवेदन दायर किया गया होता, तो स्थिति पूर्णतः भिन्न होती"*। अंततः न्यायालय ने यह प्रतिपादित किया कि दंडाधिकारी जमानत के डिफ़ॉल्ट आधार पर दायर आवेदन पर उसी दिन विचार करने के लिए बाध्य था, जिस दिन वह दायर किया गया था। अतः न्यायालय ने ***उदय मोहनलाल आचार्य*** पर भरोसा करते हुए, अभियुक्त को डिफ़ॉल्ट जमानत प्रदान किए जाने संबंधी उच्च न्यायालय के आदेश को बरकरार रखा।

16. श्री लेखी ने इस न्यायालय के निर्णय ***प्रज्ञा सिंह ठाकुर बनाम महाराष्ट्र राज्य***, (2011) 10 एस.सी.सी. 445 का सहारा लिया, जिसमें ***संजय दत्त*** (उपर्युक्त) पर भरोसा करते हुए यह प्रतिपादित किया गया था कि जहाँ निर्धारित अवधि के भीतर आरोप-पत्र दायर न किए जाने के आधार पर जमानत हेतु आवेदन दायर किया गया हो, वहाँ यदि आवेदन पर विचार किए जाने और अभियुक्त को मुक्त किए जाने से पूर्व अभियोजन आरोप-पत्र दायर कर देता है, तो जमानत का उक्त अधिकार समाप्त हो जाएगा। तत्पश्चात, अभियुक्त की जमानत पर रिहाई केवल गुण-दोष के आधार पर ही हो सकती है।यद्यपि ***प्रज्ञा सिंह ठाकुर*** (उपर्युक्त) में विद्वान न्यायाधीशों ने ***उदय***

मोहनलाल आचार्य के मामले का उल्लेख किया था, तथापि उन्होंने उपर्युक्त रूप से उल्लेखित पूर्णतः विपरीत मत व्यक्त किया है।

16.1 यह उल्लेख किया जाना चाहिए कि ***प्रज्ञा सिंह ठाकुर*** में, विद्वान न्यायाधीशों ने उस मामले के तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला था कि अभियुक्त को अभिरक्षा में भेजे जाने के प्रथम आदेश से 90 दिनों की अवधि के भीतर आरोप-पत्र दायर कर दिया गया था। डिफ़ॉल्ट जमानत के अधिकार के समाप्त होने संबंधी उपर्युक्त टिप्पणियाँ केवल ओबिटर के रूप में, काल्पनिक तर्क (हाइपोथेटिकल *आर्गुएन्डो*) के स्वरूप में की गई थीं, और अतः उन्हें किसी प्रकार का बाध्यकारी नज़ीर स्थापित करने वाला नहीं कहा जा सकता। तथापि, किसी भी स्थिति में, चूँकि राज्य द्वारा उस निर्णय पर निरंतर भरोसा किया जा रहा है, इसलिए यह स्पष्ट किया जाना आवश्यक है कि हमारे सुविचारित मत में, ***प्रज्ञा सिंह ठाकुर*** में की गई टिप्पणियाँ बड़ी पीठों द्वारा दिए गए निर्णयों में प्रतिपादित सिद्धांतों के प्रतिकूल हैं।

16.2 यह उल्लेखनीय है कि ***निराला यादव*** (उपर्युक्त) में दो-न्यायाधीशों की पीठ ने पहले ही यह स्पष्ट कर दिया है कि ***प्रज्ञा सिंह ठाकुर*** में समकक्ष पीठ द्वारा व्यक्त सिद्धांत, विशेष रूप से उस निर्णय के अनुच्छेद 54 एवं 58, विधि की सही स्थिति का प्रतिपादन नहीं करते। दोनों मतों का अध्ययन करने के उपरांत, हम विवश होकर यह निष्कर्ष निकालते और प्रतिपादित करते हैं कि ***निराला यादव*** में प्रतिपादित स्थिति सही है। हम यह पाते हैं कि ***प्रज्ञा सिंह ठाकुर*** में व्यक्त यह मत कि आरोप-पत्र दायर हो जाने के पश्चात जमानत के अधिकार पर केवल गुण-दोष के आधार पर ही विचार किया जा सकता है, संजय दत्त में संविधान पीठ द्वारा दिए गए निष्कर्षों की त्रुटिपूर्ण व्याख्या पर आधारित है। जैसा कि उपर्युक्त उल्लेख किया गया है, संविधान पीठ के निर्णय में प्रयुक्त पदबंध "यदि पहले से उपभोग न किया गया हो" की न्यायालयों द्वारा, जिसमें ***प्रज्ञा सिंह ठाकुर*** की दो-न्यायाधीशों की पीठ भी सम्मिलित है, यह कहते हुए गलत व्याख्या की गई कि अभियुक्त केवल तभी डिफ़ॉल्ट जमानत के अधिकार का उपभोग कर सकता है, जब वह आरोप-पत्र दायर किए जाने से पूर्व वास्तव में मुक्त कर दिया गया हो। तथापि, ***उदय मोहनलाल आचार्य*** (उपर्युक्त) में इस न्यायालय ने ***संजय दत्त*** के मामले में प्रतिपादित सिद्धांतों को सही रूप से समझा, विश्लेषित किया और परखा, और तत्पश्चात उपर्युक्त रूप में निष्कर्ष पर पहुँचा।

हम इस दृढ़ मत के हैं कि ***उदय मोहनलाल आचार्य*** में अपनाया गया दृष्टिकोण बाध्यकारी नज़ीर है। इसका पालन इस न्यायालय की पश्चवर्ती तीन-न्यायाधीशों की पीठ द्वारा ***सईद मोहम्मद अहमद काज़मी*** (उपर्युक्त) में भी किया गया है। अतः ***प्रज्ञा सिंह ठाकुर*** के निर्णय के

कंडिका 54 तथा 58 में दो-न्यायाधीशों की पीठ द्वारा व्यक्त यह मत कि— *"भले ही जमानत का आवेदन इस आधार पर दायर किया गया हो कि 90 दिनों के भीतर आरोप-पत्र दायर नहीं किया गया था, किंतु यदि उस पर विचार किए जाने से पूर्व और अभियुक्त को जमानत पर मुक्त किए जाने से पूर्व आरोप-पत्र दायर कर दिया जाए, तो जमानत पर मुक्त किए जाने का उक्त अधिकार समाप्त हो जाएगा", अथवा यह कि "जमानत केवल गुण-दोष के आधार पर ही दी जा सकती है", पर इनक्यूरियम (पूर्व बाध्यकारी नज़ीरों की उपेक्षा में दिया गया) घोषित किया जाना चाहिए।*

16.3 हाल ही में, ***बिक्रमजीत सिंह बनाम पंजाब राज्य*** (आपराधिक अपील सं. 667/2020, दिनांक 12 अक्तूबर 2020), 2020 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 824 में, जहाँ यू.ए.पी.ए. के अंतर्गत डिफ़ॉल्ट जमानत के आवेदन में समान प्रश्न उत्पन्न हुआ था, इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने, इस विषय पर विभिन्न निर्णयों पर विचार करने के पश्चात, निम्नलिखित रूप में अवलोकन किया—

> "उपर्युक्त निर्णयों का समग्र अवलोकन यह दर्शाता है कि जैसे ही 90 दिनों की अवधि की समाप्ति पर, आरोप-पत्र दायर किए जाने से पूर्व, डिफ़ॉल्ट जमानत प्रदान किए जाने हेतु आवेदन कर दिया जाता है (जो आवेदन लिखित होना भी आवश्यक नहीं है), वैसे ही डिफ़ॉल्ट जमानत का अधिकार पूर्ण हो जाता है। यह तथ्य अप्रासंगिक है कि संबंधित आपराधिक न्यायालय ऐसे आवेदन का निस्तारण आरोप-पत्र दायर किए जाने से पूर्व नहीं करता, अथवा आरोप-पत्र दायर किए जाने से पूर्व उस आवेदन का त्रुटिपूर्ण निस्तारण कर देता है। जब तक 180 दिनों की अधिकतम अवधि तक समय-वृद्धि किए जाने से पूर्व, निर्धारित अवधि की समाप्ति पर डिफ़ॉल्ट जमानत हेतु आवेदन कर दिया गया हो, तब तक दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के प्रथम परंतुक के अंतर्गत अभियुक्त का अविच्छेद्य अधिकार होने के कारण डिफ़ॉल्ट जमानत प्रभावी हो जाती है और प्रदान की जानी चाहिए।"

बिक्रमजीत सिंह में दिया गया यह निर्णय यह सुनिश्चित करता है कि विशेष अधिनियमों के अंतर्गत अभियुक्त की स्वतंत्रता को सीमित करने हेतु प्रदत्त कठोर शक्तियों का प्रयोग मनमाने ढंग से न किया जाए।

पुनरुक्ति की कीमत पर भी यह जोर देकर कहा जाना आवश्यक है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) तथा उससे संबंधित परंतुक को अधिनियमित करते समय

विधायिका का परम विचार यह था कि अन्वेषण शीघ्रता से पूर्ण किया जाए, और अभियुक्त को अनुचित रूप से लंबी अवधि तक निरुद्ध न रखा जाए, जैसा कि 1898 की संहिता के अधीन प्रचलित स्थिति थी। यह संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत राज्य पर आरोपित दायित्व—कि किसी व्यक्ति को उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित करने से पूर्व निष्पक्ष, न्यायसंगत एवं युक्तिसंगत प्रक्रिया का पालन किया जाए—के अनुरूप है।

निष्कर्ष

17. वर्तमान मामले में, यह निर्विवाद है कि अपीलकर्ता–अभियुक्त ने अपनी गिरफ्तारी के 181वें दिन, अर्थात् 01.02.2019 को प्रातः 10:30 बजे, न्यायालय के खुलते ही, जमानत प्राप्त करने के अपने विकल्प का प्रयोग करते हुए आवेदन दायर किया था। यह भी विवादित नहीं है कि लोक अभियोजक ने 31.01.2019 से पूर्व, अथवा 01.02.2019 को प्रातः 10:30 बजे से पूर्व, अपराध के अन्वेषण हेतु समय-वृद्धि की माँग करते हुए कोई भी आवेदन दायर नहीं किया था। लोक अभियोजक ने जिस दिन जमानत आवेदन दायर किया गया, उस दिन सायं 4:25 बजे तक जमानत आवेदन पर होने वाली बहस में भाग लिया। इसके पश्चात ही अपीलकर्ता के विरुद्ध अतिरिक्त शिकायत दायर की गई।

अतः, उपर्युक्त सिद्धांतों को लागू करते हुए, यह माना जाएगा कि अपीलकर्ता–अभियुक्त ने जमानत पर मुक्त किए जाने हेतु आवेदन दायर करते ही, तथा जमानत आदेश की शर्तों एवं प्रतिबंधों का पालन करने की पेशकश करते ही, अर्थात् 01.02.2019 को प्रातः 10:30 बजे, अपने अविच्छेद्य जमानत अधिकार का उपभोग कर लिया था। अतिरिक्त शिकायत के पश्चवर्ती दायर किए जाने के बावजूद, वह जमानत पर मुक्त किए जाने का अधिकारी था।

17.1 यह स्पष्ट है कि वर्तमान मामले में, राज्य/अन्वेषण एजेंसी ने अभियुक्त के जमानत पर मुक्त किए जाने के अविच्छेद्य अधिकार को निष्फल करने के उद्देश्य से, जमानत आवेदन पर अपीलकर्ता की ओर से प्रस्तुत तर्कों के समाप्त होने के पश्चात, संबंधित न्यायालय के समक्ष एक अतिरिक्त शिकायत दायर की है। यदि ऐसी प्रथा को अनुमति दी जाती है, तो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अंतर्गत प्रदत्त अधिकार निष्प्रभावी हो जाएगा, क्योंकि अन्वेषण अधिकारी तब तक ढिलाई बरत सकते हैं जब तक कि अभियुक्त अपने अधिकार का प्रयोग न कर ले, और जैसे ही जमानत आवेदन निस्तारण हेतु लिया जाए, सुविधानुसार अभियुक्त का नाम सम्मिलित करते हुए अतिरिक्त शिकायत दायर कर दें। ऐसी शिकायत तुच्छ आधारों पर भी हो सकती है या केवल अभियुक्त को अभिरक्षा में निरुद्ध बनाए रखने के उद्देश्य से प्रेरित भी हो सकती है; यद्यपि

वर्तमान मामले में हम अतिरिक्त शिकायत के गुण-दोष पर कोई टिप्पणी करने से परहेज़ करते हैं। अपराध की गंभीरता तथा उपलब्ध साक्ष्यों की विश्वसनीयता से निरपेक्ष, केवल डिफ़ॉल्ट जमानत के आवेदन को दरकिनार करने के लिए अतिरिक्त शिकायतें दायर करना, हमारे विचार में, एक अनुचित रणनीति है।

अतः, हमारे सुविचारित मत में, उच्च न्यायालय द्वारा विचारण न्यायालय के उस निर्णय एवं आदेश को, जिसके द्वारा अभियुक्त को डिफ़ॉल्ट जमानत पर मुक्त किया गया था, निरस्त करना उचित नहीं था।

17.2 हम यह भी पाते हैं कि उच्च न्यायालय ने निष्कर्ष पर पहुँचते समय मामले के गुण-दोष में अनुचित रूप से प्रवेश किया। उच्च न्यायालय द्वारा प्रदत्त कारण तथा निकाले गए निष्कर्ष स्वीकार्य नहीं हैं।

18. अतः, निष्कर्षतः—

18.1 जैसे ही अभियुक्त दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के परंतुक के अंतर्गत जमानत हेतु आवेदन दायर करता है, वैसे ही यह माना जाएगा कि उसने डिफ़ॉल्ट जमानत पर मुक्त किए जाने के अपने अधिकार का 'उपभोग कर लिया है' अथवा उसका प्रवर्तन कर लिया है, जो अन्वेषण हेतु निर्धारित समय-सीमा की समाप्ति के पश्चात उत्पन्न होता है। अतः, यदि अभियुक्त दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) को स्वापक औषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 36-ए(4) के साथ पढ़ते हुए, 180 दिनों अथवा यथास्थिति विस्तारित अवधि की समाप्ति पर जमानत हेतु आवेदन करता है, तो न्यायालय, उपर्युक्त रूप में वर्णित अनुसार, लोक अभियोजक से आवश्यक जानकारी प्राप्त करने के पश्चात, बिना किसी अनावश्यक विलंब के, तत्काल उसे जमानत पर मुक्त करेगा। ऐसी त्वरित कार्रवाई, अन्वेषण एजेंसी द्वारा चूक होने की स्थिति में अभियुक्त को जमानत पर मुक्त किए जाने के विधायी आदेश को विफल करने से अभियोजन को रोकेगी।

18.2 डिफ़ॉल्ट जमानत पर मुक्त किए जाने का अधिकार तब भी प्रवर्तनीय बना रहता है, यदि अभियुक्त ने ऐसी जमानत हेतु आवेदन कर दिया हो, भले ही जमानत आवेदन लंबित हो; अथवा न्यायालय के समक्ष अभियोजन द्वारा पश्चातवर्ती रूप से आरोप-पत्र दायर किया गया हो या समय-वृद्धि की माँग करने वाला कोई प्रतिवेदन दायर किया गया

हो; अथवा उस मध्यावधि के दौरान आरोप-पत्र दायर किया गया हो, जब जमानत आवेदन के अस्वीकरण को चुनौती उच्चतर न्यायालय के समक्ष लंबित हो।

18.3 तथापि, जहाँ अभियुक्त उस समय डिफ़ॉल्ट जमानत हेतु आवेदन करने में विफल रहता है, जब उसके पक्ष में यह अधिकार उत्पन्न होता है, और तत्पश्चात दंडाधिकारी के समक्ष आरोप-पत्र, अतिरिक्त शिकायत अथवा समय-वृद्धि की माँग करने वाला प्रतिवेदन प्रस्तुत कर दिया जाता है, वहाँ डिफ़ॉल्ट जमानत का अधिकार समाप्त हो जाएगा। दंडाधिकारी, यथास्थिति, मामले का संज्ञान लेने अथवा अन्वेषण की पूर्णता हेतु आगे का समय प्रदान करने के लिए स्वतंत्र होगा, यद्यपि अभियुक्त को दंड प्रक्रिया संहिता के अन्य उपबंधों के अंतर्गत जमानत पर मुक्त किया जा सकता है।

18.4 न्यायालय द्वारा डिफ़ॉल्ट जमानत का आदेश पारित किए जाने के बावजूद, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के स्पष्टीकरण–I के कारण, अभियुक्त का अभिरक्षा से वास्तविक रूप से मुक्त किया जाना, जमानत प्रदान करने वाले सक्षम न्यायालय द्वारा पारित निर्देशों पर निर्भर करता है। यदि अभियुक्त, न्यायालय द्वारा निर्धारित समय के भीतर, जमानत प्रस्तुत करने में विफल रहता है और/अथवा जमानत आदेश की शर्तों एवं प्रतिबंधों का पालन नहीं करता है, तो अभिरक्षा में उसका निरंतर निरुद्ध रहना वैध होगा।

19. अतः, उच्च न्यायालय का आक्षेपित निर्णय अपास्त किया जाता है और विचारण न्यायालय का निर्णय पुष्ट किया जाता है। तथापि, हम अतिरिक्त रूप से निर्देश देते हैं कि विचारण न्यायालय द्वारा निर्देशित ज़मानतदार प्रस्तुत करने के अतिरिक्त, अपीलकर्ता-अभियुक्त अपना पासपोर्ट भी समर्पित करेगा, अन्वेषण के प्रयोजनों हेतु जब भी अपेक्षित हो उत्तरदाता निदेशालय के समक्ष उपस्थित होने का वचन देगा, तथा विचारण न्यायालय की अनुमति के बिना चेन्नई नगर की सीमाओं से बाहर न जाने का भी वचन देगा। इससे अपीलकर्ता के न्यायालय के क्षेत्राधिकार से फरार हो जाने संबंधी किसी भी चिंता का निवारण हो जाएगा।

20. तदनुसार अपील स्वीकार की जाती है।

कल्पना के. त्रिपाठी अपील स्वीकार की गई।

खंडन (डिस्क्लेमर) - स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।